उत्तर के शैल-शिखरों से

[उत्तराखण्ड की यात्राकाल में
दिये गये प्रवचनों का सार-संग्रह]

स्वामी चिदानन्द

सङ्कलनकार तथा सम्पादक :

सुन्दरलाल बहुगुणा

योगेशचन्द्र बहुगुणा

प्रकाशक :

दिव्य जीवन सङ्घ,
पो० शिवानन्दनगर, वाया–ऋषिकेश,
जिला–टिहरी-गढ़वाल, (उ० प्र०), हिमालय।

मूल्य] १९७३ [रु० २.००

उत्तर के शैल-शिखरों से

[उत्तराखण्ड की यात्राकाल में
दिये गये प्रवचनों का सार-संग्रह]

स्वामी चिदानन्द

सङ्कलनकार तथा सम्पादक :

सुन्दरलाल बहुगुणा

योगेशचन्द्र बहुगुणा

प्रकाशक :

दिव्य जीवन सङ्घ,
पो० शिवानन्दनगर, वाया-ऋषिकेश,
जिला-टिहरी-गढ़वाल, (उ० प्र०), हिमालय।

मूल्य] १९७३ [रु० २.००

डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए श्री स्वामी कृष्णानन्द जी द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी प्रेस, शिवानन्दनगर, जिला टिहरी-गढ़वाल (उ०प्र०), हिमालय में मुद्रित।

प्रथम (हिन्दी) संस्करण — १९७३
(४००० प्रतियाँ)

—: प्राप्ति स्थान :—

शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,
डिवाइन लाइफ सोसायटी,
पो० शिवानन्दनगर,
जिला—टिहरी-गढ़वाल, (उ० प्र०),
हिमालय। २४९१९२

प्रकाशकीय

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र में कार्य करने वाले सर्व सेवा सङ्घ के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री सुन्दरलाल जी बहुगुणा के अनुरोध तथा सुझाव पर श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने गत वर्ष (१९७२में) उत्तराखण्ड की यात्रा की। उनकी इस यात्रा का उद्देश्य तथा किन परिस्थितियों में उन्होंने यह निर्णय लिया, इसका संक्षिप्त परिचय श्री बहुगुणा जी ने इस पुस्तक की प्रस्तावना में दे दिया है; अतः उसका यहाँ उल्लेख करना पिष्टपेषण ही होगा। यहाँ इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि स्वामी जी अपनी इस यात्रा में इस पर्वतीय देश के विभिन्न आयु तथा वर्ग के, विभिन्न विचार के तथा विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक स्तर के लोगों से मिले तथा उनकी स्थिति को, उनकी समस्याओं को निकट से देखा, सुना तथा अनुभव किया और जैसा कि एक आध्यात्मिक व्यक्ति से अपेक्षा की जा सकती है, उन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से उनकी समस्याओं के समाधान के लिए अपने सुझाव भी उनके समक्ष रखे।

स्वामी जी के प्रवचनों तथा वार्त्ताओं को सुनकर श्री बहुगुणा जी ने यह अनुभव किया कि ये वार्त्ताएँ केवल तात्कालिक,

स्थानीय अथवा सीमित उपयोगिता की नहीं हैं। इनके तो व्यापक प्रचार की आवश्यकता है। अतः वे उनके प्रवचनों के सार को अपनी डायरी में लिखते रहे। उनकी डायरी के ये नोट ही आज आपके सम्मुख इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत हैं। इसके सङ्कलन तथा कुशल सम्पादन का सारा श्रेय श्री सुन्दर-लाल बहुगुणा जी को ही है।

यहाँ यह कहना अनावश्यक न होगा कि स्वामी जी की इस उपर्युक्त यात्रा का सारा कार्यक्रम बहुगुणा जी ने ही तैयार किया था और उनके ही कुशल नेतृत्व में यह तीन सप्ताह की यात्रा सम्पन्न हुई थी। कुछ अपवादों को छोड़कर, इस यात्रा में स्वामी जी के साथ आश्रम का कोई भी व्यक्ति न था; अतः यदि बहुगुणा जी इन प्रवचनों को नोट करने की सावधानी न रखी होती तो वे आज प्रकाश में न आ पाते और न ही इतने अधिक लोगों तक पहुँच ही पाते। इन प्रवचनों की सार्वजनिक उपयोगिता असन्दिग्ध है। श्री सुन्दरलाल बहुगुणा जी अपनी इस अमूल्य सेवा के लिए दिव्य जीवन सङ्घ तथा हिन्दी भाषी आध्यात्मिक जनता की कृतज्ञता के पात्र हैं। हम श्री योगेश-चन्द्र बहुगुणा जी के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनका अमूल्य सहयोग यदि श्री सुन्दरलाल जी को न मिला होता तो कदाचित् यह पुस्तक इस सुन्दर रूप में इतनी शीघ्र न निकल पाती। इन दिव्य आत्माओं को भगवान् की कृपा प्राप्त हो! यही मङ्गलमय प्रभु से प्रार्थना है।

शिवानन्दनगर,
दिनाङ्क : (गुरुपूर्णिमा) : १५ जुलाई, १९७३

—प्रकाशक

उत्तराखण्ड के नाम सन्देश

उत्तराखण्ड की पवित्र धरती अनादि काल से ऋषि-मुनियों की तपः स्थली रही है। युग-युगों से जमा ज्ञान और भक्ति की पूँजी यहाँ निरन्तर बढ़ती ही रही और यही कारण है कि आधुनिक युग में स्वामी दयानन्द सरस्वती से लेकर स्वामी रामतीर्थ जी तक जितने भी धर्माचार्य व लोकाचार्य हुए हैं उन्होंने इस तपः स्थली में निवास कर नयी शक्ति अर्जित की और समस्त मानव-जाति को केवल परलोक ही नहीं, इस लोक की समस्याओं का समाधान ढूँढने का मार्ग बताया। इसलिए उत्तराखण्ड को भारतीय संस्कृति का प्रेरणा-स्रोत होने का गौरव प्राप्त हुआ है। श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के सामने मैंने यहाँ के देहातों के अपने अनुभवों को रखते हुए कहा, "मुझे लगता है कि हमारे स्रोत सूखते जा रहे हैं, दुनिया के किसी कोने से कम अज्ञान और अन्धकार यहाँ नहीं है और उससे भी बढ़कर लोगों को अपनी महान् विरासत का भान नहीं है।" और उत्तराखण्ड को अपना घर मानने वाले इस सन्त की ओर से तत्काल उत्तर आया, "इस स्थिति को बदलने के लिए हमें काम करना चाहिए।" यद्यपि उनका आश्रम

उत्तराखण्ड के प्रवेश-द्वार पर है; परन्तु यह सारे भारत का ही नहीं विश्व-भर के साधकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करता रहता है और दुनिया को परे छोड़कर एकान्त में साधना करने वालों से भिन्न उनकी साधना लोगों के बीच चलती है। वे सतत देश-विदेश की यात्राओं पर रहते हैं; परन्तु उत्तराखण्ड की २१ दिनों (२६ सितम्बर से १६ अक्तूबर १६७२ तक) की यात्रा के लिए उन्होंने समय निकालकर हम सबको कृतार्थ किया।

मैं उनके सम्पर्क में पहली बार २८ अक्तूबर, १६७१ को आया था। डेढ़ वर्ष की शराबबन्दी के बाद हाईकोर्ट के फैसले के अनुसार टिहरी और गढ़वाल में पुनः शराब की दूकानें खुलने वाली थीं। चारों ओर से एक ही आवाज सुनायी दे रही थी कि अब शराबबन्दी हो नहीं सकती। इस घने अन्धकार के बीच वे स्वयं एक नवम्बर को टिहरी पहुँचे और शराबबन्दी के मुट्ठी भर समर्थकों को, दृढ़प्रतिज्ञ होकर आन्दोलन करने की प्रेरणा दे आये। और यह हम सबके लिए एक आश्चर्यजनक सत्य था कि शराबबन्दी के लिए एक महान् जन-आन्दोलन खड़ा हुआ। स्त्रियाँ रण-चण्डी बनकर घरों से निकल पड़ीं, विद्यार्थी और अध्यापक स्कूल छोड़कर शराबबन्दी के प्रदर्शनकारी बन गये; पुरुषों ने शराब छोड़ने के सङ्कल्प किये। शराब की दूकान के सामने की सड़क प्रार्थना-भूमि बन गयी और टिहरी, देहरादून तथा सहारनपुर की जेलें शराबबन्दी सत्याग्रही स्त्री, पुरुष और बच्चों के तीर्थ बन गये। यह एक आध्यात्मिक आन्दोलन था और अन्त में स्वामी जी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। उन्होंने कहा था, "हमारी केन्द्रीय सरकार के शासन का प्रतीक 'सत्यमेव जयते' है। सत्य आपके

पास है और आपके लिए विजय है।" १ अप्रैल, ७२ से देव-भूमि उत्तराखण्ड में पुनः शराबबन्दी हुई। गङ्गा और यमुना का उद्गम-प्रदेश, भगीरथ और शङ्कराचार्य की तपःस्थली को देशवासियों को व्यसन- मुक्त जीवन की ओर बढ़ने का सन्देश देने का गौरव प्राप्त हुआ।

परन्तु आज के भौतिकवादी संसार में, जहाँ सभ्यता के नाम पर हम पशुता की ओर बढ़ रहे हैं; उत्तराखण्ड को केवल मानवता का ही नहीं, दिव्यता का सन्देश फैलाना है। श्री स्वामी चिदानन्द जी को केवल हमारे मानवीय गुणों का विकास करने से ही सन्तोष नहीं है, वे तो हर एक मानव के अन्दर छिपे हुए दिव्य गुणों के प्रगटीकरण के लिए उत्सुक हैं। उनके शब्दों में, "तुम भगवान् की दिव्य सन्तान हो। सेवा प्रेम का सक्रिय प्रकट स्वरूप है। सेवामय जीवन, प्राणी मात्र से प्रेम, भगवद्भक्ति और ध्यान —दिव्य जीवन का सन्देश है।" मुझे उनके साथ उत्तराखण्ड की यात्रा में स्थान-स्थान पर तरुणों, महिलाओं, नागरिकों, अधिकारियों और समाज-सेवकों की सभाओं में केवल इस दिव्य सन्देश के सुनने का अवसर ही नहीं मिला, बल्कि उनके जीवन से इन मूल्यों का स्पष्ट दर्शन भी हुआ।

यद्यपि उन्हें प्रकाश प्रातःस्मरणीय स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में बैठकर मिला, परन्तु छह वर्षीय बालक श्रीधर राव को मङ्गलोर में अपने नाना के साथ एक आम सभा में गाँधी जी के निकट मञ्च पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बापू के विचारों ने उन्हें पीड़ितों और दलितों का सेवक बना दिया। वे प्रति-वर्ष २ अक्तूबर को अपने आश्रम में हरिजन पूजा करते हैं। इस वर्ष यह पूजा उत्तरकाशी में

सम्पन्न हुई। पहाड़ों में भंगी अन्य अछूत जातियों से भी अछूत माने जाते हैं। उत्तरकाशी की हरिजन पूजा में (जिसका विवरण परिशिष्ट में है) हम सबको चाहे सर्वत्र हरिदर्शन पर विश्वास करने वाले भक्त हों और चाहे मानव मात्र की समता में विश्वास रखने वाले समाजवादी—अपने दिलों को टटोलने के लिए मजबूर कर दिया है।

परन्तु मैं तो इससे चार दिन पूर्व चिन्यालीसौड़ की घटना आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। इण्टर कालेज का हाल विद्यार्थियों, शिक्षकों और नागरिकों से खचाखच भरा हुआ था। स्वामी जी के प्रवचन के पश्चात् हाल खाली हो गया, परन्तु हाथ में कागज का पुर्जा लिए हुए एक बूढ़ा चर्मकार मेरे पास आया। यह स्वामी जी के लिए उसका प्रार्थना-पत्र था। 'लोग हमारे बनाये हुए जूते नहीं पहनते। जमीन है नहीं, परिवार भूखों मर रहा है। जमीन खरीदने के लिए रुपया चाहिए।' मैंने उससे पूछा, 'स्वामी जी रुपया कहाँ से देंगे?' गाँव में प्रधान जी से जमीन के लिए प्रार्थना की, परन्तु वे भी मजबूर थे। मैं उसे निराश नहीं लौटाना चाहता था। अन्त में कहा, "जैसे भी हो जूते बनाओ। मैं उन्हें बिकवाने का प्रवन्ध करूगा।" स्वामी जी भोजन कर रहे थे। मैंने यह कहानी उन्हें सुनायी। हाथ का कौर हाथ में ही रह गया और तत्काल उन्होंने कहा, "यद्यपि मुझे तो कभी जूता खरीदना नहीं पड़ता, परन्तु आज से साल में दो जोड़े तो उसके बनाये हुए जूते या चप्पल पहनूँगा।"

भोजन के बाद ज्यों ही हम आगे बढ़े, उसकी झोपड़ी पर स्वामी जी ने गाड़ी रुकवा दी। सारा परिवार बरामदे में बैठकर छाछ की कढ़ी के साथ रोटियाँ खा रहा था। अपने

विश्वास है। इसलिए वे उन्हें पश्चिम के कृत्रिम जीवन के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं, "वहाँ के जीवन की बाहरी चमक-दमक के अन्दर एक अज्ञात भय छिपा हुआ है। यूरोप वस्तुओं का देश *(Thing land)* बन गया है। पश्चिमी सभ्यता ने दो विनाशकारी युद्धों को जन्म दिया है। गुफा में रहने वाले मनुष्य के सामने हिंसक जन्तुओं से, भूख और प्राकृतिक प्रकोपों से बचने की समस्या थी। आज पुनः मानव-जाति के सामने अपने अस्तित्व की समस्या है—अपने मानव-बन्धुओं से अपने को बचाने की। हमारे देश में गांधी जी ने मानव के इतिहास का अध्ययन किया और दोनों हाथ उठाकर कहा कि भारत पश्चिम की बेवकूफियों की नकल न करे। मनुष्य को महत्व दीजिए। मनुष्य को वस्तुओं के लिए न बनने दीजिए।" यह कब हो सकता है? जब गांधी जी के विचारों के अनुसार हम अपना जीवन बनायें।

हम अविकसित क्षेत्र में रहते हैं और आज के शिक्षित व्यक्ति के मन में विकास का जो चित्र है उसके अनुसार खूब मोटर-सड़कें बननी चाहिए, बड़े कारखाने होने चाहिए, भोग-विलास के साधन बढ़ने चाहिए। पहाड़ और वन हमेशा से ही मनुष्य को भौतिक और आत्मिक शक्ति प्रदान करने वाले रहे हैं। यह शक्ति एकान्त से पैदा हुई है। यह सोचने का उपयुक्त अवसर है कि जिस शोरगुल से मुक्ति पाने के लिए

सम्पन्न हुई। पहाड़ों में भंगी अन्य अछूत जातियों से भी अछूत माने जाते हैं। उत्तरकाशी की हरिजन पूजा में (जिसका विवरण परिशिष्ट में है) हम सबको चाहे सर्वत्र हरिदर्शन पर विश्वास करने वाले भक्त हों और चाहे मानव मात्र की समता में विश्वास रखने वाले समाजवादी—अपने दिलों को टटोलने के लिए मजबूर कर दिया है।

परन्तु मैं तो इससे चार दिन पूर्व चिन्यालीसौढ़ की घटना आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। इण्टर कालेज का हाल विद्यार्थियों, शिक्षकों और नागरिकों से खचाखच भरा हुआ था। स्वामी जी के प्रवचन के पश्चात् हाल खाली हो गया, परन्तु हाथ में कागज का पुर्जा लिए हुए एक बूढ़ा चर्मकार मेरे पास आया। यह स्वामी जी के लिए उसका प्रार्थना-पत्र था। 'लोग हमारे बनाये हुए जूते नहीं पहनते। जमीन है नहीं, परिवार भूखों मर रहा है। जमीन खरीदने के लिए रुपया चाहिए।' मैंने उससे पूछा, 'स्वामी जी रुपया कहाँ से देंगे ?' गाँव में प्रधान जी से जमीन के लिए प्रार्थना की, परन्तु वे भी मजबूर थे। मैं उसे निराश नहीं लौटाना चाहता था। अन्त में कहा, 'जैसे भी हो जूते बनाओ। मैं उन्हें बिकवाने का प्रबन्ध करूगा।" स्वामी जी भोजन कर रहे थे। मैंने यह कहानी उन्हें सुनायी। हाथ का कौर हाथ में ही रह गया और तत्काल उन्होंने कहा, "यद्यपि मुझे तो कभी जूता खरीदना नहीं पड़ता, परन्तु आज से साल में दो जोड़े तो उसके बनाये हुए जूते या चप्पल पहनूँगा।"

भोजन के बाद ज्यों ही हम आगे बढ़े, उसकी झोपड़ी पर स्वामी जी ने गाड़ी रुकवा दी। सारा परिवार बरामदे में बैठकर छाछ की कढ़ी के साथ रोटियाँ खा रहा था। अपने

आँगन में उन्हें खड़ा देखकर बूढ़ा हक्का-बक्का होकर बाहर आया और इससे पहले कि वह स्वामी जी को प्रणाम करता, वे भक्तिपूर्वक उसके चरण स्पर्श कर रहे थे। सारे परिवार को मिठाइयाँ बाँटी और उसकी जेब में एक लिफाफा डाल दिया। रास्ते में वे मुझसे कह रहे थे, "लोग बापू जी को आदर्शवादी कहते हैं, परन्तु उनके समान व्यावहारिक आदर्शवादी मुझे ढूँढकर भी नहीं मिलता। गाँव के गरीब कारीगरों पर होने वाले बड़े उद्योगों के आक्रमण को उनकी दिव्य दृष्टि ने पहले ही देख लिया था और इसलिए उन्होंने 'स्वदेशी' को एकादश व्रतों में स्थान दिया। एक व्यावहारिक सत्य को उन्होंने आध्यात्मिक स्वरूप दिया।"

उत्तराखण्ड के लोक-जीवन की ओर उनके आकर्षण का मुख्य कारण उनकी 'मातृभक्ति' है। मार्च १९७० में टिहरी में शराबबन्दी के लिए महिलाओं ने जो सत्याग्रह किया था और उसके पश्चात् उनकी जेल-यात्रा की कहानियाँ विदेश-यात्रा से लौटने के बाद स्वामी जी ने सुनी थी; परन्तु यहाँ पर स्त्रियों के कष्टमय जीवन की व्यथा उनका सन्त-हृदय सह नहीं सका। बड़कोट में एक सज्जन ने शिकायत की कि उन्हें शराबबन्दी और महिला-उत्थान आदि से क्या मतलब? आध्यात्मिक विषयों पर अपने उपदेश दें। उन्होंने कहा, "आम तौर पर साधारण जनता समझती है कि दुनियादारी, लेन-देन सांसारिक बात है और आध्यात्मिक बात उसे कहते हैं जो भगवान् से सम्बन्ध रखती हो। सांसारिक जीवन का मतलब है स्वार्थ-परायण जीवन, केवल भौतिक चीजों के संग्रह के लिए जीवन जीना। इससे आदमी भगवान् से दूर हट जाता है। भगवान् की ओर आगे बढ़ना है तो 'स्वार्थ' को छोड़ दें। विषय-भोग

की लालसा छोड़ दें। हम माया में तब नहीं फसेंगे, जब लक्ष्य ऊँचा है। भगवान् की भक्ति मलिन मन के अन्दर नहीं आ सकती है और न वेदान्त का ज्ञान टिक सकता है। आदि शङ्कराचार्य का कहना था कि चित्त की शुद्धि निस्स्वार्थ सेवा से हो सकती है। निष्कामता, परहित के लिए काम करना कर्मयोग है। साधु का अर्थ है—**'सर्वभूत हिते रतः'** जो सबकी भलाई में लगा है। अगर समाज में कोई साधु पुरुष देखता है कि ऐसी प्रवृत्ति चल रही है जिससे सबका नुकसान हो रहा है तो वह ऐसे पाप-कर्मों से लोगों को रोकने की कोशिश करेगा। उसके आध्यात्मिक जीवन में यह भी एक साधना है। शराब से जो बरबाद हो रहा है उसको बचाने के लिए वह सेवा करता है, उसको भगवान् के रूप में देखकर।"

और स्त्रियों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा, "जहाँ पर स्त्रियों को दुःखी करेंगे, वह परिवार चौपट हो जावेगा। नारी को जीवन का साथी समझकर व्यवहार करें। जब सन्तान हो जाती है तो पुरुष को समझना चाहिए कि मैंने ही इसके द्वारा जन्म लिया। पहली सन्तान के बाद यह मेरी माँ बन गयी है। नवरात्र आवेगा। हमारी संस्कृति क्या याद दिलाती है? हम कुमारियों की पूजा करते हैं; क्योंकि हम नारीवर्ग में साक्षात् पराशक्ति का दर्शन करते हैं। यह प्रतीक नहीं है, हमारी संस्कृति का मूल तत्त्व है। नारियों के लिए जिस घर में सम्मान होगा, वहीं बच्चों का सन्तुलित विकास होगा।"

उन्हें केवल भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए नहीं सारी मानव-जाति के त्राण के लिए तरुणों द्वारा भारतीय संस्कृति के मूल्यों को अपना कर एक नया सवेरा लाने का अटल

विश्वास है। इसलिए वे उन्हें पश्चिम के कृत्रिम जीवन के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं, "वहाँ के जीवन की बाहरी चमक-दमक के अन्दर एक अज्ञात भय छिपा हुआ है। यूरोप वस्तुओं का देश *(Thing land)* बन गया है। पश्चिमी सभ्यता ने दो विनाशकारी युद्धों को जन्म दिया है। गुफा में रहने वाले मनुष्य के सामने हिंसक जन्तुओं से, भूख और प्राकृतिक प्रकोपों से बचने की समस्या थी। आज पुनः मानव-जाति के सामने अपने अस्तित्व की समस्या है—अपने मानव-बन्धुओं से अपने को बचाने की। हमारे देश में गाँधी जी ने मानव के इतिहास का अध्ययन किया और दोनों हाथ उठाकर कहा कि भारत पश्चिम की बेवकूफियों की नकल न करे। मनुष्य को महत्व दीजिए। मनुष्य को वस्तुओं के लिए न बनने दीजिए।" यह कब हो सकता है? जब गाँधी जी के विचारों के अनुसार हम अपना जीवन बनायें।

हम अविकसित क्षेत्र में रहते हैं और आज के शिक्षित व्यक्ति के मन में विकास का जो चित्र है उसके अनुसार खूब मोटर-सड़कें बननी चाहिए, बड़े कारखाने होने चाहिए, भोग-विलास के साधन बढ़ने चाहिए। पहाड़ और वन हमेशा से ही मनुष्य को भौतिक और आत्मिक शक्ति प्रदान करने वाले रहे हैं। यह शक्ति एकान्त से पैदा हुई है। यह सोचने का उपयुक्त अवसर है कि जिस शोरगुल से मुक्ति पाने के लिए लोग पहाड़ों पर आते हैं, क्या हम उसे पहाड़ों में पैदा करेंगे? और जिस पवित्र जल व ताजी हवा के लिए आज उद्योग प्रधान क्षेत्र तड़प रहे हैं, बड़े उद्योगों को पहाड़ों में लाकर उन्हें विदा देंगे? जिस त्याग और तपस्या ने ऋषियों को भारतीय संस्कृति के सारभूत तत्त्वों का दर्शन कराया, उसे

अपने जीवन से निकाल देंगे ? यह कुछ बुनियादी प्रश्न हैं जिनकी ओर सोचने के लिए स्वामी जी ने हमें प्रवृत्त किया है। मुझे आशा है कि मेरे साथ उत्तराखण्ड के प्रबुद्ध लोगों के लिए इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढने और अपनी दिशा निश्चित करने के लिए स्वामी जी के विचार सहायक होंगे।

हमने २१ दिनों में २००० किलोमीटर की यात्रा की। इसमें कुछ पैदल यात्रा भी थी। इस यात्रा के दौरान स्वामी जी की सादगी और सिपाहियों वाली चुस्ती ने तो हमपर अपनी छाप छोड़ दी है, परन्तु सबसे अधिक उनके मातृत्व को मैं भूल नहीं सकता। नैनीताल, कोटद्वार, ऋषिकेश के दौरान मैं अस्वस्थ हो गया। वे गाड़ी पर रास्ते भर मेरा सिर सहलाते रहे। इसी प्रकार की पित्त की तकलीफ घनसाली और गोपेश्वर के बीच उन्हें भी हुई थी। उल्टियाँ और असह्य सिरदर्द के बीच भी उन्होंने गोचर और गोपेश्वर में प्रवचन दिये।

हमें आशा है कि उत्तराखण्ड की अंधेरी से अंधेरी गुफाओं तक अपना 'दिव्य सन्देश' पहुँचाने का यह क्रम वे प्रतिवर्ष जारी रखेंगे और गाँधी-विनोबा के प्रति अपनी अपूर्व भक्ति तथा सर्वोदय विचार के प्रति अडिग निष्ठा के कारण उत्तराखण्ड को उन मूल्यों पर आधारित नये समाज के निर्माण की प्रयोग-भूमि बनावेंगे।

—सुन्दरलाल बहुगुणा

स्वामी चिदानन्द—एक रेखा-चित्र

अपने पूर्वाश्रम में श्रीधर राव के नाम से विख्यात श्री स्वामी चिदानन्द जी का जन्म २४ सितम्बर १९१६ को मङ्गलोर में एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुल में हुआ। उनके पिता का नाम श्री निवास राव तथा माता का नाम सरोजिनी राव था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मङ्गलोर में ही हुई। सन् १९३४ में वे मद्रास के लोयोला कालेज में प्रविष्ट हुए और १९३८ में वहाँ से साहित्य स्नातक होकर निकले।

बाल्यावस्था में उनके कोमल हृदय पर उनके एक निकट के सम्बन्धी श्री अनन्तैया जी की धार्मिक भावनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा और विद्यार्थी काल में उनकी अधिकांश शिक्षा क्रिश्चियन कालेज में होने के कारण ईसाई धर्म तथा उनके मिशनरी कार्य ने भी इनके जीवन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। यही कारण है कि हम उनके जीवन में पूर्व तथा पश्चिम के धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता का अनुपम सामञ्जस्य पाते हैं। जहाँ उनमें भारतीय अध्यात्म के प्रति गहरी आस्था है वहीं उनमें एक ईसाई मिशनरी की तरह जीव मात्र की सेवा करने

अपने जीवन से निकाल देंगे ? यह कुछ बुनियादी प्रश्न हैं जिनकी ओर सोचने के लिए स्वामी जी ने हमें प्रवृत्त किया है। मुझे आशा है कि मेरे साथ उत्तराखण्ड के प्रबुद्ध लोगों के लिए इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने और अपनी दिशा निश्चित करने के लिए स्वामी जी के विचार सहायक होंगे।

हमने २१ दिनों में २००० किलोमीटर की यात्रा की। इसमें कुछ पैदल यात्रा भी थी। इस यात्रा के दौरान स्वामी जी की सादगी और सिपाहियों वाली चुस्ती ने तो हमपर अपनी छाप छोड़ दी है, परन्तु सबसे अधिक उनके मातृत्व को मैं भूल नहीं सकता। नैनीताल, कोटद्वार, ऋषिकेश के दौरान मैं अस्वस्थ हो गया। वे गाड़ी पर रास्ते भर मेरा सिर सहलाते रहे। इसी प्रकार की पित्त की तकलीफ घनसाली और गोपेश्वर के बीच उन्हें भी हुई थी। उल्टियाँ और असह्य सिरदर्द के बीच भी उन्होंने गोचर और गोपेश्वर में प्रवचन दिये।

हमें आशा है कि उत्तराखण्ड की अंधेरी से अंधेरी गुफाओं तक अपना 'दिव्य सन्देश' पहुँचाने का यह क्रम वे प्रतिवर्ष जारी रखेंगे और गाँधी-विनोबा के प्रति अपनी अपूर्व भक्ति तथा सर्वोदय विचार के प्रति अडिग निष्ठा के कारण उत्तराखण्ड को उन मूल्यों पर आधारित नये समाज के निर्माण की प्रयोग-भूमि बनावेंगे।

—सुन्दरलाल बहुगुणा

स्वामी चिदानन्द—एक रेखा-चित्र

अपने पूर्वाश्रम में श्रीधर राव के नाम से विख्यात श्री स्वामी चिदानन्द जी का जन्म २४ सितम्बर १९१६ को मङ्गलोर में एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुल में हुआ। उनके पिता का नाम श्री निवास राव तथा माता का नाम सरोजिनी राव था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मङ्गलोर में ही हुई। सन् १९३४ में वे मद्रास के लोयोला कालेज में प्रविष्ट हुए और १९३८ में वहाँ से साहित्य स्नातक होकर निकले।

बाल्यावस्था में उनके कोमल हृदय पर उनके एक निकट के सम्बन्धी श्री अनन्तैया जी की धार्मिक भावनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा और विद्यार्थी काल में उनकी अधिकांश शिक्षा क्रिश्चियन कालेज में होने के कारण ईसाई धर्म तथा उनके मिशनरी कार्य ने भी इनके जीवन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। यही कारण है कि हम उनके जीवन में पूर्व तथा पश्चिम के धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता का अनुपम सामञ्जस्य पाते हैं। जहाँ उनमें भारतीय अध्यात्म के प्रति गहरी आस्था है वहीं उनमें एक ईसाई मिशनरी की तरह जीव मात्र की सेवा करने

की सच्ची लगन भी है। तभी तो कुष्ठरोगियों की सेवा उनके हृदय में प्रथम स्थान ले पायी।

धनी परिवार में जन्म लेने पर भी वहाँ के सुख-वैभव इन्हें प्रलोभित न कर पाये। अध्यात्म की तीव्र पिपासा से वे अनेक आश्रमों, तीर्थ स्थलों तथा सन्त-महात्माओं के दर्शन करते हुए सन् १६४३ में दिव्य जीवन सङ्घ के संस्थापक स्वामी शिवानन्द जी की सेवा में ऋषिकेश पहुँचे। यही उनकी दीर्घकालीन खोज का अन्तिम पड़ाव था।

यहाँ पर वह अपने गुरुदेव स्वामी शिवानन्द के निर्देशन में आध्यात्मिक साधना में लग गये। साधना के साथ ही साथ वह विविध रूपों में संस्था को अपनी अमूल्य सेवाएँ प्रदान की। वह सङ्घ के महासचिव तथा योग-वेदान्त आरण्य अकादमी के उपकुलपति जैसे उच्च पदों को सँभाले। इसके साथ ही साधकों को मार्गदर्शन, नियमित वर्गों में प्रवचन, पुस्तकों के लेखन तथा उनके प्रकाशन का भी कार्य करते रहे।

सन् १६४६ में स्वामी शिवानन्द जी से संन्यास की दीक्षा ली। १६५० में अपने गुरुदेव के साथ अखिल भारत तथा सिंहल द्वीप की यात्राएँ की। १६५६ में गुरुदेव के एक प्रतिनिधि के रूप में पाश्चात्य देशों की यात्रा पर गये। वहाँ से वह १६६२ में भारत वापस आये। १६६३ में स्वामी शिवानन्द जी की महासमाधि के पश्चात् दिव्य जीवन सङ्घ के परमाध्यक्ष बने। तब से वह इस पद को निरन्तर सँभाले हुए हैं। सन् १६६८ में वह पुनः विदेश गये और विश्व-भ्रमण कर १६७० में स्वदेश लौटे।

भारतीय संस्कृति की रक्षा तथा उसका प्रचार, दलितों का

उद्धार तथा प्राणी मात्र की सेवा में उनकी गहन रुचि है। चाहे प्रमुखालय शिवानन्दनगर में हों अथवा देश-विदेश की यात्राओं पर, वह इन कार्यों में अविरत संलग्न रहते हैं।

विषय-सूची

विषय   पृष्ठ-संख्या

परिशिष्ट

परम पूज्य श्री स्वामी
चिदानन्द जी महाराज

उत्तर के
शैल-शिखरों से

१-

शराबबन्दी : एक धार्मिक कार्य

आप दिव्य हैं; आप यह नाशवान् शरीर नहीं हैं। यह हड्डी-माँस की पुतलियाँ आप नहीं हैं। यह शरीर-पिञ्जर आप नहीं हैं और सङ्कल्प-विकल्पात्मक, विक्षेप, राग-द्वेष, सद्-असद् की भावना तथा अनेक प्रकार की तृष्णाओं और आकांक्षाओं से भरा हुआ यह मन भी आप नहीं हैं और इस मन से परे जो बुद्धि है, जो कभी सन्मार्ग बताती है और कभी लोभ में पड़ बुरे मार्ग का निर्देश करती है, कभी सद्विचार करती है तो कभी गहन अन्धकारमय कुविचार में फँस जाती है, कभी विवेक-पूर्ण रहती है तो कभी बहुत बड़े अविवेक का शिकार हो जाती है वह सदा परिवर्तनशील बुद्धि भी आप नहीं हैं। इस बुद्धि की शक्ति भी अत्यन्त संकुचित है। इस शरीर, मन और बुद्धि से परे आप तो वह तत्त्व हैं, जिसको न शस्त्र काट सकता है, न हथियार क्षत-विक्षत कर सकता है, जिसको अग्नि जला नहीं सकती, जिसको पानी भिगो नहीं सकता, डुबा नहीं सकता, जिसको पवन सुखा नहीं सकता, उड़ा नहीं सकता।

आप ऐसी अमर आत्मा हैं, अजर हैं, दिव्य हैं, अनादि और अनन्त हैं। देश, काल तथा अवस्थानुसार शरीर तथा मन में कुछ परिवर्तन घटित होता रहता है; किन्तु वह आपका परिवर्तन नहीं कर सकता। आप हमेशा अनादि, अनन्त, एकरूप, सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप हैं, सर्वशक्तिमान् हैं। आपमें सभी क्षमताएँ विद्यमान हैं। आपमें ज्ञान है। आपके अन्दर शान्ति है। आपके अन्दर पवित्रता है। आपके अन्दर अपार शक्ति है। अपने आपको आत्मस्वरूप पहचान कर, अपनी चेतना को उस पर स्थापित करके, आप जो भी कार्य करेंगे, वह पूर्ण और सफल होगा। आत्मा के अन्दर से जो शक्ति निकलती है, उसके सामने इस विश्व की ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है, ऐसी कोई भी भौतिक शक्ति नहीं है, जो उसका सामना करके उसपर विजय पा सके। यह आत्मबल और आत्मशक्ति सर्व शक्तियों से परे, सर्व शक्तियों से प्रबल शक्ति है और आप जो यह दिव्य आत्मा हैं, जो आपका असली स्वरूप है, उसका अनुभव करना, उसको पा लेना, उसको समझ लेना—यही हमारी संस्कृति का सबसे ऊँचा लक्ष्य है। इसको कहते हैं तत्त्वज्ञान, इसी को अपरोक्षानुभूति, भगवत्साक्षात्कार तथा भगवद्दर्शन कहते हैं। इस दर्शन से, इस तत्त्वज्ञान से, इस भगवत्साक्षात्कार से, इस आत्मज्ञान से मनुष्य परिपूर्णता को पाता है। उसकी सब चिन्ता, दुःख, यातना तथा कष्ट मिटकर वह अवस्था पा लेता है जिसमें केवल आनन्द ही आनन्द है, फिर कोई भी कमी नहीं रह जाती है। यह परिपूर्णता की अवस्था है। यह आनन्द, शान्ति, ज्ञान और पूर्णता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, जिनकी प्राप्ति के लिए हमने जन्म लिया है और भगवान् ने हमें शारीरिक शक्ति, क्रिया-शक्ति, सोच-विचार करने की मानसिक शक्ति, बुद्धि और

विवेक इसी की प्राप्ति के लिए दिया है।

जब तक इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, आत्मज्ञान, भगवत्साक्षात्कार तथा दिव्यानुभूति के लिए हम प्रयास करते रहेंगे, तब तक उसे इस संसार में रहकर ही करना पड़ेगा। इसके लिए जो कुछ भी साधना करनी होगी—योगाभ्यास, भजन-पूजन, जप आदि संसार में रहकर ही करना होगा और जब हम संसार में रहकर इस महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, तब संसार के साथ जिस प्रकार रहना चाहिए, इस अध्यात्म-आदर्श की प्राप्ति-काल में हमें संसार के साथ जैसा व्यवहार करना चाहिए, उसके लिए एक अन्य आदर्श है और वह है 'धार्मिक आदर्श।' यह धार्मिक आदर्श हमारी संस्कृति का, हमारी भव्य संस्कृति का, गौरवशाली उत्तम संस्कृति का, जिस संस्कृति का केन्द्र यह उत्तराखण्ड है, जिसका उत्पत्ति-स्थान यह उत्तराखण्ड है, उस संस्कृति का यह धार्मिक आदर्श, यह दूसरा आदर्श एक शब्द में 'परोपकार' है। हमारी यही इच्छा होनी चाहिए कि हमसे दूसरों की भलाई हो। हमारे द्वारा दूसरों की सेवा हो। मेरे जीवन से दूसरों को लाभ हो। मैं संसार में रहते हुए किस भाँति दूसरों को लाभ पहुँचा सकता हूँ? दूसरों के दुःख में थोड़ा-बहुत भाग लेकर मैं कैसे उनके दुःख को मिटा सकता हूँ? दूसरों के सुख में साथ देकर कैसे उनके सुख को बढ़ा सकता हूँ? इस इच्छा को, इस भावना के अनुसार व्यवहार करना ही 'धर्म' है।

दूसरों की भलाई के हेतु, सेवा के हेतु, उपकार के लिए यह शरीर मिला है। संस्कृत में कहा गया है : **'परोपकारार्थमिदं शरीरम्'**। हे मानव! उस परम सत्ता ने तुम्हें यह शरीर इसलिए दिया है कि इसके द्वारा तुम परोपकार करो। अपने

लिए तो प्रत्येक प्राणी, यहाँ तक की पशु भी, प्रयास कर लेता है, सोच लेता है कि क्या खाऊँ, क्या पीऊँ, किस तरह आराम से रहूँ; किन्तु मानव एक ऐसा विशेष प्राणी है जो कि औरों की भलाई सोच सकता है। इस प्रकार परोपकारमय जीवन व्यतीत करते हुए, सेवा से भरा हुआ व्यवहार करते हुए आत्म-साक्षात्कार के लिए दिन-रात प्रयत्न करना ही मानव-धर्म है। परोपकारमय आचरण आत्म-ज्ञान-प्राप्ति की साधना है। इस मार्ग में जो कुछ भी बाधा के रूप में आता है, वह हमारा शत्रु है, जो कुछ भी उपर्युक्त दोनों आदर्शों की प्राप्ति में बाधा डाले, विघ्न उपस्थित करे, वह हमारे लिए वर्जित होना चाहिए, त्याज्य होना चाहिए। पशु और मानव में अन्तर क्या है ? पशु सोच-विचार नहीं कर सकता है, मानव सोच सकता है, विचार कर सकता है, यह विचार-शक्ति, बुद्धि और विवेक जो है, वही पशु और मनुष्य में अन्तर बताता है। मानव इसीलिए मानव है; क्योंकि उसमें बुद्धि है। और जो आदतें, वस्तुएँ इस बुद्धि में मन्दता लाती हैं, बुद्धि की विचार-शक्ति में एक धुँधला धुआँ-सा पैदा करके उस शक्ति को घटा देती हैं, वे मानव के लिए कल्याणकारी नहीं हैं। ये मानव-समाज की तथा व्यक्ति की प्रगति के लिए शत्रु हैं। इस तरह से मानव के चरित्र में गिरावट लाने वाली,मानव की बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली और अपने आदर्शमय जीवन से गिराने वाली वस्तुओं में एक मुख्य वस्तु शराब है। शराब तथा अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन हमारे अन्दर नशा पैदा करके हमारी विचार-शक्ति को, अच्छे विचारों को भगा देता है। शराब के नशे में आदमी क्या करता है, क्या बनता है, वह आप सब, जिनका इसके साथ प्रत्यक्ष अनुभव है, जानते ही हैं।

यहाँ पर आप जितने लोग आये हुए हैं, सबसे मेरी एक सानुरोध प्रार्थना है। जो लोग यहाँ नहीं आ सके हैं, उनके विषय में हमें खेद है, उन्हें एक ओर रहने दीजिए; परन्तु आप जो लोग यहाँ उपस्थित हैं, वे भी तो टिहरी के समाज के प्रतिनिधि हैं और आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि यहाँ पर वक्ताओं ने जो भी विचार आपके सम्मुख रखे हैं, उन्हें अपने मन में धारण करके, याद रखें और जब यहाँ से जायें तो जितनी अधिक संख्या में लोगों को आप इन विचारों को दे सकते हैं, देने की कोशिश करें। आज ही नहीं, हमेशा के लिए आपमें से हर व्यक्ति हम लोगों के इस मञ्च का प्रतिनिधि बन जाय; क्योंकि यह कार्य केवल मात्र सुन्दरलाल जी बहुगुणा का ही नहीं है और न यह कार्य यहाँ मञ्च पर बैठे लोगों का ही है; बल्कि सबका है। मैं तो कहता हूँ कि जितने सरकारी अधिकारी हैं, वे भी अन्दर-अन्दर से, दिल से आपके साथ सहानुभूति रखते हैं; क्योंकि कौन-सा ऐसा सरकारी अधिकारी चाहेगा कि उसके परिवार में उसका ही पुत्र शराब पीकर घर में आकर उसे गाली दे। ऐसा कोई सरकारी अधिकारी नही है—चाहे वह डी० एम० हो, सी० एम० हो, एस० डी० ओ० हो, एस० पी० हो—जो चाहे कि उसके घर में ऐसा हो कि उसी का बड़ा लड़का शराब के नशे में धुत होकर घर में आकर माँ-बाप को गाली दे या उपद्रव मचाये? एक भी सरकारी अधिकारी की धर्मपत्नी ऐसी न होगी जो चाहे कि उसका पति ऑफिस से घर में आने के पश्चात् खूब शराब पीकर गड़बड़ मचाये। कितना ही बड़ा सरकारी अधिकारी क्यों न हो, वह ऐसा कदापि न चाहेगा कि उसके घर में ऐसा हो। इसमें कभी दो मत नहीं हो सकते कि नशा, शराब हो या

टिञ्चरी, सबके लिए हानिकारक है।

कुछ ऐसे लोभीजन हैं कि उनके व्यापार से चाहे दुनिया बरबाद हो जाए; लेकिन उनकी जेब में कुछ पैसा आ जाना चाहिए। ऐसा सोचने वाले भले ही अच्छा समझें; किन्तु मैं भगवा पहने हुए आपके समाज के चतुर्थ आश्रम में रहने वाला हूँ, ब्रह्मचारी नहीं हूँ, गृहस्थ नहीं हूँ, वानप्रस्थी नहीं हूँ, मैं संन्यासी हूँ। मैं कहता हूँ कि औरों की हानि करके, औरों का स्वास्थ्य, औरों की आर्थिक दशा, औरों की सामाजिक परि-स्थिति, औरों के गृह-कल्याण पर चोट पहुँचाकर, हानि करके जो कोई पैसा कमायेगा, वह पैसा उसको कभी नहीं फलेगा। वह पैसा बरबाद हो जायगा। वह पैसा अनेक दुःख देगा। वह पैसा बीमारी में, या तो कैंसर में, या डाक्टरों को, या मुकदमे के लिए और चोर के हाथ में जाकर कभी भी उसके लिए लाभदायक नहीं होगा। दूसरों को दुःख देकर, दूसरों को हानि पहुँचा कर कितना ही धन कमायें, उस धन से सुख नहीं मिल सकता। हम दूसरों को सुख व आराम दें तो हमें भी सुख तथा आराम मिलेगा। हम दूसरों को हानि व दुःख पहुँचायें तो हमको भी वही मिलेगा। "जैसा दोगे, वैसा पाओगे," यह विश्व का महान् कानून है। यह कार्य-कारण का नियम है। इसे क्रिया और प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। गेंद को तुम दीवार पर फेंको तो वह लौटकर आप पर ही आयेगा। पैसे की, धन की कमाई हमारी संस्कृति में कभी भी बुरी नहीं मानी गयी है। प्रत्येक मनुष्य को चार प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिए, प्रयत्न करना चाहिए।

धर्मशास्त्रों ने हमारे लिए कहा है कि चार प्रकार की वस्तुओं के लिए हमें पुरुषार्थ करना चाहिए। तुम्हें धर्म की

कमाई करनी चाहिए। इच्छापूर्त्ति के सम्बन्ध में उन्होंने बतलाया है कि हरएक व्यक्ति की जिस पदार्थ में इच्छा रहती है, यदि वह इच्छा धर्म के विरुद्ध न हो, उस इच्छा की पूर्त्ति में औरों की हानि न होती हो, तो ऐसी इच्छा की पूर्त्ति के लिए अवश्यमेव प्रयास करना चाहिए। अर्थ संग्रह भी करना चाहिए। इस भौतिक जगत् में सङ्घर्ष के बिना शरीर-यापन नहीं हो सकता है; किन्तु जीवन के प्रत्येक कार्य और व्यवहार में अपनी प्रवृत्ति को धर्म से नहीं हटाना चाहिए। धर्म को अपने व्यवहार की नींव बनाकर धर्म के अनुसार कार्य करो। अर्थ संग्रह करो। ईमानदारी से जीविका कमाओ। अच्छी तरह से धन का भोग करो, किन्तु औरों को हानि मत पहुँचाओ। आपकी कमाई, आपका व्यवहार, आपकी इच्छा-पूर्त्ति, आपके धन की कमाई भली प्रकार हो। मनुष्य का जो अन्तिम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, अपने आपको पहचान लेना कि मैं दिव्य हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं अजर, अमर आत्मा हूँ—इस लक्ष्य के मार्ग से अलग न हों। अपनी इस दिशा को आप न भूलें और इस आधार को आप कभी न छोड़ें। धर्म पर स्थित होकर धनोपार्जन कीजिए। अपनी इच्छाओं को भले ही पूरा करें, थोड़ा-बहुत जो साधारण भोग हैं, खाओ, पीओ, अच्छे मकान में रहो, यह भी ठीक है। हमारे संस्कृति-दाताओं ने कभी अर्थ का निषेध नहीं किया।

हाँ, तो प्रत्येक मनुष्य को यह काम अपना समझ लेना चाहिए। इसका खूब प्रचार करना चाहिए। कुछ लोग गत वर्ष के आन्दोलन के सम्बन्ध में बताने के लिए मेरे पास आये थे। उन्होंने इस आन्दोलन के उपलक्ष्य में प्रकाशित 'दैनिक गढ़वाल' के विशेषांक की एक प्रति दिखलायी, जिसमें लिखा था कि

'टिहरी की माताओं तथा देवियों ने इस आन्दोलन को सफल बनाया।' ऐसा मैंने पढ़ा; लेकिन उससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मैं लज्जित भी हुआ। क्यों, यह काम देवियों के द्वारा ही होना चाहिए? क्या आप पुरुष इसमें उनकी सहायता नहीं कर सकते? क्या आप लोगों का भी यह उत्तरदायित्व नहीं है? क्या यह आप लोगों की जिम्मेदारी नहीं है? मैं चाहता हूँ कि इस आन्दोलन में जितनी संख्या में हमारी माताएँ रुचि लें, उससे दुगुनी संख्या में टिहरी और गढ़वाल के नागरिक कटिबद्ध होकर भाग लें, दृढ़ प्रतिज्ञ होकर भाग लें, तो हमारी उस सङ्गठित शक्ति से, जिसे असम्भव कहते हैं वह भी सम्भव हो जायेगा, जो असाध्य कहा जाता है वह भी साध्य हो जायेगा।

अन्त में बापूजी के कुछ विचार रखता हूँ, जिन्हें सर्वप्रथम उन्होंने प्रकट कर पुष्ट किया था। उनके जीवन की सफलता के दो-तीन रहस्य आपके सम्मुख रखता हूँ जिनको अपनाने से आपका यह आन्दोलन निस्सन्देह पूर्ण सफल होकर रहेगा।

बापूजी को लोग राजनीतिज्ञ कहते थे। उन्हें रिफार्मर (समाजसुधारक) कहते थे, किन्तु बापूजी स्वयं कहते थे 'मैं सत्य की खोज करने वाला एक जिज्ञासु हूँ। मैं सत्य की खोज करने वाला एक मुमुक्षु हूँ।' उन्होंने कहा: 'राजनीति के क्षेत्र में हो, सामाजिक क्षेत्र में हो अथवा जीवन के अन्य किसी भी क्षेत्र में हो, उसमें जो कुछ सफलता व कामयाबी मैंने पायी है, उसका रहस्य है भगवान् पर मेरा विश्वास। यह सत्य है। यह रहस्य है। मैं इन कार्यों के लिए प्रतिदिन प्रातः व सायं बैठकर, प्रार्थना करके भगवान् के साथ अपना आन्तरिक तार जोड़ देता था, उस कनेक्शन से, उस सम्बन्ध से, मुझे उनके द्वारा शक्ति मिलती थी। जो कुछ किया उस शक्ति ने किया

या मेरे द्वारा कराया।' उनकी दूसरी शक्ति थी प्रार्थना की शक्ति। प्रार्थना में हम, असीम दिव्य शक्ति का जो सागर है, उससे शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। दस-पन्द्रह मिनट सबेरे और शाम को बैठकर, दैनिक कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व और सारे दैनिक कार्य करने के पश्चात् मौन होकर भगवान् के साथ हमें अपना आन्तरिक सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। इस भाँति हमें उस कनेक्शन से आत्मशक्ति को प्राप्त करना चाहिए और भगवान् पर अटल विश्वास रखना चाहिए। महात्माजी की शक्ति का तीसरा रहस्य था रामनाम। उनकी शक्ति का अपना रहस्य वह असली कुञ्जी रामनाम थी। वह रामनाम के उपासक थे। रामनाम जपते थे। वह भगवन्नाम से ही

'टिहरी की माताओं तथा देवियों ने इस आन्दोलन को सफ
बनाया।' ऐसा मैंने पढ़ा; लेकिन उससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ
मैं लज्जित भी हुआ। क्यों, यह काम देवियों के द्वारा ही होन
चाहिए? क्या आप पुरुष इसमें उनकी सहायता नहीं क
सकते? क्या आप लोगों का भी यह उत्तरदायित्व नहीं है
क्या यह आप लोगों की जिम्मेदारी नहीं है? मैं चाहता हूँ वि
इस आन्दोलन में जितनी संख्या में हमारी माताएँ रुचि ले
उससे दुगुनी संख्या में टिहरी और गढ़वाल के नागरिक कटिब
होकर भाग लें, दृढ़ प्रतिज्ञ होकर भाग लें, तो हमारी उ
सङ्गठित शक्ति से, जिसे असम्भव कहते हैं वह भी सम्भव ह
जायेगा, जो असाध्य कहा जाता है वह भी साध्य हो जायेगा।

अन्त में बापूजी के कुछ विचार रखता हूँ, जिन्हें सर्वप्रथ
उन्होंने प्रकट कर पुष्ट किया था। उनके जीवन की सफलत
के दो-तीन रहस्य आपके सम्मुख रखता हूँ जिनको अपनाने रे
आपका यह आन्दोलन निस्सन्देह पूर्ण सफल होकर रहेगा।

बापूजी को लोग राजनीतिज्ञ कहते थे। उन्हें रिफार्म
(समाजसुधारक) कहते थे, किन्तु बापूजी स्वयं कहते थे 'मै
सत्य की खोज करने वाला एक जिज्ञासु हूँ। मैं सत्य की खोज
करने वाला एक मुमुक्षु हूँ।' उन्होंने कहा: 'राजनीति वे
क्षेत्र में हो, सामाजिक क्षेत्र में हो अथवा जीवन के अन्य किसी
भी क्षेत्र में हो, उसमें जो कुछ सफलता व कामयाबी मैंने पायी
है, उसका रहस्य है भगवान् पर मेरा विश्वास। यह सत्य है।
यह रहस्य है। मैं इन कार्यों के लिए प्रतिदिन प्रातः व साय
बैठकर, प्रार्थना करके भगवान् के साथ अपना आन्तरिक तार
जोड़ देता था, उस कनेक्शन से, उस सम्बन्ध से, मुझे उनके
द्वारा शक्ति मिलती थी। जो कुछ किया उस शक्ति ने किया।

ा मेरे द्वारा कराया।' उनकी दूसरी शक्ति थी प्रार्थना की ाक्ति। प्रार्थना में हम, असीम दिव्य शक्ति का जो सागर है, उससे शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं। दस-पन्द्रह मिनट सवेरे और शाम को बैठकर, दैनिक कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व और सारे दैनिक कार्य करने के पश्चात् मौन होकर भगवान् के साथ हमें अपना आन्तरिक सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। इस भाँति हमें उस कनेक्शन से आत्मशक्ति को प्राप्त करना चाहिए और भगवान् पर अटल विश्वास रखना चाहिए। महात्माजी की शक्ति का तीसरा रहस्य था रामनाम। उनकी शक्ति का अपना रहस्य वह असली कुञ्जी रामनाम थी। वह रामनाम के उपासक थे। रामनाम जपते थे। वह भगवन्नाम से ही पूर्ण शक्ति प्राप्त करते थे। जो कोई भी नहीं कर सकता है, वह रामनाम कर सकता है, भगवन्नाम कर सकता है। वह तो अद्भुत, अवर्णनीय एक दिव्य शक्ति है। आप रामनाम का अभ्यास कीजिए। भगवान् में अटल विश्वास रखकर इस कार्य में प्रवृत्त होइए और प्रातः और सायं वही कार्य करते रहें- थोड़ा-बहुत दस-पन्द्रह मिनट की मौन प्रार्थना। मौन होकर, सीधा बैठकर, उनके साथ वह तार जोड़कर, उनसे प्रेरणा और शक्ति पाने का अभ्यास करें। मौन प्रार्थना, भगवन्नाम और अटल विश्वास के द्वारा आप शक्तिशाली बनें। थोड़े ही दिनों में आप इस कार्य में पूर्ण सफलता पा सकते हैं। आज से लेकर प्रतिदिन शाम को अपने आश्रम के दैनिक सत्सङ्ग में, जो सायं साढ़े सात बजे से साढ़े नौ बजे तक होता है, आप लोगों के इस सत्कार्य की सफलता के लिए हम आश्रम में जितने भी साधक, संन्यासी तथा मेहमान हैं, सब सम्मिलित होकर प्रार्थना करेंगे; और अब इतना ही कहना है कि यह

शुभ कार्य है, अच्छा कार्य है, धर्म-कार्य है, सत्य के पक्ष
हमारी केन्द्रीय सरकार के शासन का प्रतीक 'सत्यमेव
है। सत्य आपके पास में है और आपके लिए विजय
लेकिन एक प्रार्थना है कि आन्दोलन शुरू से लेकर अन्त
शान्तिपूर्वक हो, हमेशा गम्भीरतापूर्वक हो और जब एक
प्रारम्भ कर दिया तो फिर अब पीछे नहीं हटना चाहिए।
जो यह कहते हैं कि आपके किये कुछ नहीं होगा, पर मैं क
हूँ कि यह तो होने वाला है। संस्कृत में एक श्लोक है, जि
अर्थ है कि 'सबसे निचले स्तर का वह इन्सान है जो व
वाले कार्य में आने वाली सम्भावित बाधाओं को सोच
उनसे भयभीत होकर कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करता।
विघ्न की कल्पना करके काम शुरू ही नहीं करता, वह स
नीचा इन्सान है। जो मध्यम वर्ग का इन्सान होता है
कार्य शुरू कर देता है, किन्तु कार्य के बीच में यदि कोई वि
आ गया तो कार्य को वहीं छोड़ देता है। यह नम्बर दो
इन्सान है। पर विघ्न और बाधाओं के बार-बार आने प
भी जो अपने सङ्कल्पित कार्य को छोड़ता नहीं है, वह उत्तम है
मेरी कामना है कि आप सब जितने भी महानुभाव यहाँ उपस्थि
हैं, सब इस अन्तिम अर्थात् उत्तम कोटि के इन्सान हों! इ
कार्य को एक बार अपनाकर आगे बढ़ाना चाहिए, छोड़न
नहीं चाहिए। यह किनके वास्ते? इन बच्चों के वास्ते,
बच्चों के कल्याण के वास्ते। शराब, टिञ्चरी के प्रयोग से घर
यदि बरबाद हो रहा हो तो उस घर के बच्चों की बरबादी
होगी, उनका भविष्य नष्ट हो जायगा। इसलिए ध्यान रखिए,
बाल भारत के ऊपर, भारत के भविष्य के ऊपर। हम लोगों
के लिए नहीं तो कम से कम इन लोगों के भविष्य के लिए,

इन बालकों के लिए इस कार्य को अपनाकर हम आगे जायें और इन बातों का सब तरह से प्रचार करके जिनमें जागृति नहीं है, जहाँ अन्धकार है, वहाँ भी उजाला लेकर, जागृति उत्पन्न करके इस आन्दोलन की शक्ति को बढ़ाते जायें—यही मेरी परम प्रभु से प्रार्थना है। इस पवित्र भूमि भारतवर्ष में परम पावन जो यह उत्तराखण्ड है, उसके आप सब हमारे बन्धु गण हैं। आप सब के ऊपर परम प्रभु अपना पूर्ण दिव्य अनुग्रह अभी भी बरसाएं और हमेशा बरसाते रहें और सद्गुरु महाराज स्वामी शिवानन्द जी तथा उत्तराखण्ड के जितने भी अन्य महा-पुरुष, गुरुजन, तपस्वी, पहुँचे हुए ज्ञानी पुरुष हैं, उन सबका आशीर्वाद आप लोगों पर हमेशा रहे ! केवल आन्दोलन में ही नहीं, वरन् जो भी सत्कार्य अपने जिम्मे लें, उस सत्कार्य में उन लोगों का आशीर्वाद रहे ! प्रभु का जो अनुग्रह है उससे कदम-कदम पर प्रत्येक वस्तु में सफलता प्राप्त करके आपका जीवन दिव्य हो, आप धन्य हों। इतना ही कहकर मैं धन्य-वाद देता हूँ। माताओं से क्षमा माँगता हूँ कि आपकी गढ़वाली में मैं आपसे बोल नहीं सका।

टिहरी में शराबबन्दी आन्दोलन के उद्घाटन के अवसर पर १ नवम्बर, ७१ को दिया गया प्रवचन।

२-

पर्वतीय माताओं की सेवा में

आराधनीया भगवतीस्वरूप माता जी !

ॐ नमो नारायणाय। माँ पराशक्ति के साक्षात् अंश तथ प्रतीक बने हुए आपके चरण में मेरी अनेक बन्दना। मुझे अत्यन्त हर्ष है कि आपकी सेवा में यह संदेश भेजने का अवसर प्राप्त हुआ है। हमारे सद्गुरू श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज भारत की नारियों को जगत्माता का स्वरूप मानते थे। आपके प्रति गुरुदेव शिवानन्द जी के हृदय में बहुत ही ऊँचा भाव तथा मान्यता तथा आत्मीय प्रेम रहा है। उसका स्मरण हो रहा है, जब मैं इन शब्दों को कह रहा हूँ।

नारी किसी भी राष्ट्र के भविष्य, विकास तथा प्रगति की कुन्जी अपने हाथ में रखती है; क्योंकि देश की प्रजा की हर पीढ़ी में, उसकी बाल्यावस्था में माता ही सर्वप्रथम शिक्षिका होती है। घर ही बाल राष्ट्र की प्रारम्भिक शाला बनकर बाल राष्ट्र के भावी निर्माण तथा संस्कार प्रदान का अति अमूल्य स्थान है। और गृहरूपी शिक्षा-केन्द्र में, इस प्रारम्भिक शिक्षण

में सबसे प्रभावशाली तत्त्व माता का व्यक्तिगत आदर्श ही होता है। जिस तरह एक कुम्हार अथवा शिल्पकार चिकनी मिट्टी को लेकर अपने हाथ से उसको चाहे जो आकृति दे सकता है, उसी तरह सन्तान की शैशवावस्था में अपने वचन तथा व्यवहार द्वारा जिस प्रकार चाहें उनका चरित्र निर्माण कर सकती हैं। यह मार्मिक, अर्थपूर्ण तथा महत्वपूर्ण शक्ति आपकी है। इसको जानते हुए भावी भारत का निर्माण आपको परिवार में बच्चों की उचित सेवा तथा शिक्षा द्वारा करनी चाहिए। भारत का भविष्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। गढ़वाल का घर-घर भारत के भविष्य का निर्माण-स्थल है।

स्त्री को अबला कहते हैं; लेकिन मैं कहता हूँ स्त्री वास्तव में प्रबला है। स्त्री अपनी सहनशक्ति, शान्ति, तितिक्षा, तपस्या तथा भगवद्भक्ति द्वारा पुरुषों के जीवन में भी चमत्कारिक परिवर्तन ला सकती है। पर्वतीय जीवन बहुत परिश्रम से भरा हुआ है। कठिनाई, गरीबी तथा बारहमासी प्रयास का जीवन है। इस व्यस्तता में भजन के लिए कहाँ मौका ? ईश्वर-पूजन के लिए कहाँ समय ? यह प्रश्न उठता है। इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूँ कि जिन्दगी का हर एक कार्य सचमुच भजन है। आपको प्रतिदिन जो भी काम करना है घर में, पशुओं के साथ, जङ्गल में, खेती में, खलिहानों में- आप परम पिता प्रभु का, जो सर्वत्र विराजमान है, भजन समझ कर कीजिए। कहिए, "हे पिता ! हे भगवन् ! मैं तो इसी तरह से तुझे रिझा सकती हूँ। मेरा हर काम ही मेरा फूल, बेल तथा तुलसी है। मेरी मेहनत का काम ही मेरा चन्दन, कुमकुम तथा अर्चना और आरती है। यही तेरे चरणों में मैं अर्पण करती हूँ। ले मेरी पूजा !" इस तरह भगवान् जो आपका

अपना ही है, जो सबसे निकट और प्यारा है, उससे बात करते हुए, मन में प्रेम से स्मरण करते हुए, उसका दिव्य नाम जबान पर लाते हुए अपने काम में लगी रहिए। हर काम भजन बन जायेगा। हर स्थान घर हो, जङ्गल हो, खेत हो—प्रभु का मन्दिर बन जायेगा। प्रभु आपको घर में ही दर्शन देगा। आपका दैनिक जीवन परम पवित्र बन जायेगा। दैनिक जीवन ही आपकी महान् साधना बन सकता है, यदि आपका भाव ईश्वर-पूजन का है और आपका काम उसके नाम के साथ जुड़ा हुआ है। ऐसा जीवन शान्ति, शक्ति, आनन्द तथा विकास का कारण बनेगा और आपके जीवन में दिव्यता तथा ज्ञान की ज्योति को जगा देगा। भजन तथा भगवान् केवल मात्र योगी, साधु तथा संन्यासी के लिए ही नहीं है। भगवद्भजन तथा ब्रह्मानन्द हर एक मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है; आपका भी है।

अन्त में मैं आपका धैर्य, दृढ़ता तथा आदर्श पर निष्ठा, हाल ही में हुए मद्य-निषेध आन्दोलन के सत्याग्रह के कार्य से देख पाया हूँ। इससे मैं न केवल बहुत प्रभावित हूँ, साथ ही बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित भी हूँ। आपकी निष्ठा तथा मनोबल को देख कर मुझे भारतवर्ष के भविष्य में पूर्ण विश्वास है।

आपको मैं बधाई देता हूँ। वर्त्तमान आन्दोलन में सफलता हुई है, परन्तु आगे इन नशीली आदतों के निर्मूलन में अभी बहुत कार्य करना शेष है। आप उसको भी इसी तरह की सङ्घ-शक्ति तथा निर्भय दृढ़ भाव के द्वारा सम्पन्न करेंगी। तथापि इस कार्य में प्रातः स्मरणीय बापू जी की अहिंसा तथा प्रेम के मार्ग को नहीं छोड़ेंगी, यह मेरा विश्वास है। तभी हमारे पवित्र उत्तराखण्ड क्षेत्र का, जो अपनी गोद में भारतवर्ष के सबसे उत्तमोत्तम तीर्थ स्थानों को रखे हुए है, यश, मर्यादा तथा

दिव्यता सुरक्षित रह सकती है। उत्तराखण्ड की दिव्यता तथा पवित्रता में ही भारत राष्ट्र की सुरक्षा रह सकती है; भारतीय समाज का कल्याण है। इसी से भारतीय संस्कृति के विकास तथा प्रगति की आशा है।

इस कार्य में सफलता की प्राप्ति आपके हाथों में है। यही आपका महत्व तथा आपको भगवान् का दिया हुआ सौभाग्य है।

पुनः धन्यवाद। मैं धन्यवाद सहित परमात्मा के चरणों में आपकी तथा आपके पूरे परिवार की कुशलता, कल्याण तथा सुख के वास्ते हार्दिक प्रार्थना करता हुआ अब समाप्त करता हूँ।

गोपेश्वर के महिला-शिविर के लिए
दिया गया संदेश ७, ८ जनवरी ७२।

माताएँ आत्मज्ञानी बनें

ज्ञान में द्वैतभाव की समाप्ति—

आप न पुरुष हैं न स्त्री, न नाम हैं न रूप। आपका जो आत्मतत्त्व है वही आपका शाश्वत स्वरूप है। इस सत्य को एक क्षण के लिए भी न भूलें। जो महानतम आध्यात्मिक सत्ता है, अविनाशी आत्मतत्त्व है, उसे प्राप्त करने का अधिकार पुरुषों के साथ-साथ आपको भी है। भारतवर्ष की संस्कृति ने यह सिद्ध कर दिया है। इस देश में जिस प्रकार महान् वेदान्ती ऋषि हुए हैं, उसी तरह उनके साथ बैठकर आत्म-तत्त्व की चर्चा करने वाली नारियाँ भी हुई हैं जिनमें गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, चुड़ाला, मदालसा प्रमुख हैं। आपका सम्बन्ध इस महान् परम्परा के साथ है। आगे चलकर स्त्रियों को अवला कहा जाने लगा; परन्तु यह संकुचित दृष्टि है। आप सब तो सवला हैं। पुरुष को उसकी कमजोरियों में से उवारने की शक्ति आपमें है। तभी तो द्वितीय आश्रम अर्थात् गृहस्थ-आश्रम में आपके सहयोग से पुरुष बलवान् बनता है।

भारत की आदर्श सन्नारियाँ—

दशरथ महाराज की कहानी आप जानती ही हैं। उनकी महिषी कैकेयी को कैसा वर मिला ? दुस्सङ्ग में पड़कर उसने इस वर का दुरुपयोग किया, यह इतिहास आप भी जानती हैं। किस अवसर पर उसे यह वर दिया गया था ? दशरथ महान् योद्धा थे। एक प्रचण्ड संग्राम में कैकेयी भी उनके साथ थीं। वह भी रथ में बैठकर उनके साथ गयी थीं। उस युद्ध के बीच में रथ की कील उखड़ गयी और इससे रथ के पहिए के अलग हो जाने का खतरा पैदा हो गया। कैकेयी ने कील के स्थान में अपनी उङ्गली रख दी। कालान्तर में दशरथ जी को जब कैकेयी की इस बहादुरी का पता चला तो उन्होंने उसे वर माँगने को कहा।

प्राचीन काल में आत्मज्ञान की अनुभूति भी पुरुषों तक ही सीमित नहीं थी। मीरा, लीला आदि कई मुक्त सन्त महिलाएँ हो गयी हैं। आधुनिक समय में आनन्दमयी माँ, जानकी माई, रमण महर्षि की शिष्या, सती गोदावरी माई, रामा देवी तथा माता कृष्णा बाई आदि मुक्त महिलाएँ हैं। बल का स्रोत शरीर नहीं, आत्मज्ञान है।

पाश्चात्य जगत् में विज्ञान की जो प्रगति हुई है, उसके सम्बन्ध में आप जानती ही हैं। अमेरिका ने विज्ञान में बहुत प्रगति की है। विज्ञान की घोषणा है कि पदार्थ-जगत् में अन्तिम वस्तु अणु है। पदार्थ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप अणु है। हमारा जो दर्शन शास्त्र है, उसमें एक वैशेषिक दर्शन है। उन्होंने भी बहुत पहले यही घोषणा की थी। वे तो इससे भी आगे गये और निर्णय किया कि अस्तित्व का अन्तिम स्वरूप ऊर्जा *(Energy)* है। गतिशील शक्ति ही विश्व का अन्तिम

स्वरूप है।

नारी मोक्षदायिनी—

वैदिक धर्म में पाँच मुख्य सम्प्रदाय हैं—(१) शैव—शङ्कर को मानने वाले, (२) वैष्णव—विष्णु को मानने वाले, (३) गाणपत्य—गणेश को मानने वाले, (४) शौरेय—सूर्य को मानने वाले तथा (५) शाक्त—शक्ति को मानने वाले। इनमें से पाँचवें सम्प्रदाय का कहना है कि जो कुछ इस जगत् में दिखायी दे रहा है, वह सब परा शक्ति का खेल है। **'सर्व शक्तिमयं जगत्'** ऐसा वे कहते हैं। शाक्त सम्प्रदाय वाले शक्ति की पूजा माँ के रूप में करते हैं। इस भाँति भारत की संस्कृति में आपको शक्ति-स्वरूप माना गया है। नवरात्रि पूजा के अन्तिम दिन कुमारी पूजा होती है। भारतीय समाज में मातृत्व से ही स्त्री की पहचान होती है। भारतवर्ष की सब भाषाओं में स्त्री को माता कहकर सम्बोधित करते हैं। स्त्री के शक्ति-स्वरूप की यह भावना आप और किसी समाज में नहीं पायेंगी। बङ्गाल में विवाह-संस्कार के समय जब वर-वधू मण्डप से आते हैं तो लड़की के हाथ में एक तेज छुरी दी जाती है। इस सङ्केत का यह अर्थ है कि वह मोक्षदायिनी शक्ति है। वह पुरुष को बन्धन-मुक्त कर सकती है। भारत की संस्कृति में आपका जो यह गौरवशाली स्थान है, उसे आपको अच्छी तरह पहचानना चाहिए और उस गौरव को कायम रखना चाहिए।

दाम्पत्य—दो आत्माओं का पवित्र मिलन—

गृहस्थ-आश्रम के विषय में आपको एक और अर्थ में भी समझना चाहिए। विवाह केवल एक सामाजिक मेल ही नहीं है। दाम्पत्य-सम्बन्ध वास्तव में दो आत्माओं का पवित्र

आध्यात्मिक मिलन है। यह दिव्य विकास और मोक्षावस्था की ओर आगे बढ़ने का साधन है। दोनों मिलकर महान् प्रगति की ओर आगे बढ़ें, यह दाम्पत्य-जीवन का सार है। पुरुष के आध्यात्मिक विकास में सहयोग देना आपके लिए सौभाग्य की बात है। यही सौभाग्य पुरुष का भी है। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र और माँ सीता के आदर्शों के अनुसार आप अपना जीवन बनायें। संसार के सब मानव पुत्र-तुल्य हैं, यह भाव रखें।

संस्कृति की संरक्षक—

हमारी संस्कृति की रक्षा पुरुषों के नहीं, स्त्रियों के हाथ में है *(Woman is the custodian of the culture of the land)* एक जीवात्मा आपके घर में जन्म लेता है तो उसपर प्रथम और सबसे गम्भीर प्रभाव घर के वातावरण का पड़ता है। इसमें भी बच्चों पर पिता की अपेक्षा माता का प्रभाव अधिक पड़ता है। जो हाथ पालना झुलाते हैं वही राष्ट्रों का निर्माण भी करते हैं। *(The hand that rocks the cradle rules the nation).*

मैं अपनी ही व्यक्तिगत बात कहूँ। मैं जो आज हूँ उसके लिए एक महत्वपूर्ण कारण मेरी माँ है। सबसे बड़ी सन्तान होने के कारण मेरी माँ मुझसे बहुत प्रेम करती थी। मैं बिना माँ के पेट पर हाथ रखे सोता नहीं था। सोते समय मैं उनसे गीत गाने तथा कहानी कहने का हठ करता। वह मीराबाई तथा रैदास के भजन गातीं और उत्तराखण्ड के सन्तों की कहानियां सुनातीं। सोते समय माँ के द्वारा सुनायी गयी कहानियों से मैंने भक्ति का संस्कार पाया। आप अपने घरों को इतना शक्तिशाली बनायें कि आपके घर के अन्दर सत्ययुग

रहे। आप चाहें तो इस नरक के बीच भी अपने घर
वैकुण्ठ बना सकती हैं। अपने घरों में रोज प्रार्थना करे
महापुरुषों के चित्र लगायें। शारदा देवी और दूसरी भ
महिलाओं के जीवन-चरित्र पढ़ें। बेकार की बातचीत
करें। घर के अन्दर विधायक और ऊर्ध्वगामी वातावर
बनायें। दीपक की भाँति संस्कृति की ज्योति को सुरक्षित रख
कर अमर बनायें।

पर्वतीय प्रदेश का देहाती समाज बहुत पिछड़ा हुआ है
इसका कारण अपनी संस्कृति के प्रति समझ की कमी है
देहात की बहनों के बीच भी कुछ विकास और निर्माण का
काम होना चाहिए। यह हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य है। उत्तर
काशी में जो बहनें हैं, उन्हें सङ्गठित होकर काम करना
चाहिए। सात-आठ बहनें मिलकर आस-पास के देहातों में
घूमें। रजत जयन्ती वर्ष में भारत में कम से कम एक लाख
परिवार खादी पहनने का व्रत लेंगे। उत्तरकाशी से भी लोग
यह प्रण लें।

महिला इण्टर कालेज, उत्तरकाशी
में दिया गया प्रवचन २-१०-७२।

४-

उत्तराखण्ड भारत की आध्यात्मिक राजधानी बने

आप सब एक महान् संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। भारतीय संस्कृति का लक्ष्य बहुत महान् है। यह लक्ष्य है—आत्मसाक्षात्कार के लिए जीवन में साधना करना, मानव-जीवन को भोग और भौतिकता की भूमिका से ऊपर उठाते हुए उसे ऊँचे लक्ष्यों तक पहुँचाना। पूरे मानव-इतिहास में हमारी संस्कृति का यह एक विशेष काम रहा है। मानव केवल एक स्थूल और वाह्य घटना नहीं है। जो बाह्य और दृश्यमान है उसके पीछे एक अव्यक्त और सूक्ष्म तत्त्व छिपा हुआ है। इसका दर्शन हमारे प्राचीन लोगों को हुआ था।

आप उत्तराखण्ड के सब निवासी बड़े सौभाग्यशाली हैं जो इस पवित्र क्षेत्र में जन्मे हैं। भारत के इस उत्तरी भाग को पूरे भारत की जनता अत्यन्त पवित्र क्षेत्र मानती है। हर भारतीय के जीवन की यह लालसा रहती है कि कब वह दिन आयेगा जब वह चारों धाम की यात्रा करेगा—कैलास-मानसरोवर की,

गङ्गोत्तरी-यमुनोत्तरी की, बद्री-केदार की यात्रा करेगा।
उन लोगों का जीवन-स्वप्न होता है। एक बार यहाँ के
दर्शन करके हम अपने को धन्य बना लेंगे, ऐसी इच्छा प्र
भारतीय की रहती है। गङ्गा के दर्शन करने की, हिमाल
दर्शन करने की इच्छा हर भारतीय के मन में रहती है। इ
दर्शन कर वे अपने को धन्य मानते हैं। इतना ऊँचा भाव
क्षेत्र के सम्बन्ध में हर नर-नारी के हृदय में बसा है। ह
शास्त्रों और पुराणों में भी इस देश की प्रशंसा की गयी
आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द ने भी इस क्षेत्र का ग
बढ़ाया है। पाश्चात्य जगत् में वेदान्त का जय घोष करके
वे भारत लौटे तो कोलम्बो से अल्मोड़ा तक की यात्रा की
उस समय उन्होंने जो प्रवचन दिये, वे 'फ्राम कोलम्बो टु अल्मो
नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। इस परम पुनीत उत्तराखण्ड
जन्म लेने का जो सौभाग्य आप लोगों को प्राप्त हुआ; उस
गर्व करें। इसकी पवित्रता, महानता और सुन्दरता को बन
रखने का प्रयत्न करें। प्रातः सायंकाल इस कर्त्तव्य का अ
मन में चिन्तन करते हुए इसकी शान व पवित्रता आपके जीव
कार्यों द्वारा आगे बढ़े।

इतिहास की गति परिवर्तन द्वारा ही आगे बढ़ती है। प
वर्तन को हम रोक नहीं सकते; परन्तु यदि हम सचेत हैं त
इतना कर सकते हैं कि जो हमारे प्राचीन उदात्त मूल्य हैं, प
वर्तन की प्रक्रिया द्वारा हम उनका संरक्षण करें। हम स
भारत माता के पुत्र हैं। बृहद् रूप में भारत आपकी मातृभूमि
है। उत्तराखण्ड आपकी जन्मभूमि है। यह भारत का शीर्षस्थल
है। भारतवर्ष की शान, धर्म व दर्शन की उत्पत्ति का स्थान यह
उत्तराखण्ड है। याज्ञवल्क्य, व्यास, शङ्कराचार्य, स्वामी राम-

तीर्थ जैसे सन्तों और ऋषियों ने यहाँ से ज्ञान की गङ्गा प्रवाहित की। हम इस क्षेत्र की पवित्रता को स्थायी बनाये रखने तथा यहाँ की ज्ञान-गङ्गा की परम्परा को स्थिर रखने के लिए कार्य करेंगे। यह भारत माता की परमोत्कृष्ट सेवा होगी। मानवता के लिए भारत ने जो सन्देश दिया है, उसका उत्पत्ति-स्थान भी यहीं है। अतः पर्यटक या जिज्ञासु के रूप में जो भी यहाँ आयें उन्हें आप लोगों के जीवन से प्रेरणा मिलनी चाहिए।

सञ्चार के साधनों की कमी के कारण अब तक यह क्षेत्र देश के दूसरे भागों से अलग-थलग था। अब यातायात तथा सञ्चार के साधन बढ़े हैं। अतः अब आपको सदैव जागृत रहना है, जिससे बाहर की गलत चीजें यहाँ न पहुँचें। यहाँ का विकास इस तरह हो, ताकि यहाँ की पवित्रता बनी रहे, यहाँ के लोगों की कार्यकुशलता बढ़े और जो भी बाहर से यहाँ आयें उनके जीवन में धार्मिकता और आध्यात्मिकता की उन्नति हो।

हमारे इस प्रदेश में माताओं का जीवन बहुत ही कठोर और थका देने वाला है। उनके जीवन का विकास होना चाहिए। नये ज्ञान-विज्ञान का फल उन्हें भी मिलना चाहिए और यह तभी सम्भव है जबकि उन्हें अवकाश के कुछ क्षण मिलें। उन्हें कठोर जीवन से मुक्ति मिले। आजकल नवरात्रि की पूजा चल रही है। नवरात्रि का सन्देश यही है कि भारत में नारियों की पूजा होती है। पर्वतीय प्रदेश की जनता में यह समझ जागनी चाहिए कि हमारी धर्मपत्नी हमारी सहेली है। पति और पत्नी के बीच का सम्बन्ध केवल शारीरिक तथा सामाजिक न होकर आध्यात्मिक भी है। यह एक पवित्र तथा दिव्य मिलन है। सामान्य जनता को यह समझना चाहिए कि स्त्री विवाह के

समय पैसा देकर खरीदी गयी नौकरानी नहीं है। यह हमार सौभाग्य है कि भारतीय सन्नारी अपने पति को देवता समझत है। यह तो उसका दृष्टिकोण होना चाहिए, पर हमारा कर्त्तव यह है कि हम उसे गृहलक्ष्मी मानें तथा उसका सम्मान करें इस भाँति दाम्पत्य जीवन के प्रति हमारी नयी समझ व नय ज्ञान होगा, तब पारिवारिक जीवन में गम्भीरता व पवित्रत आयेगी।

इन सारी बातों के लिए कार्य कौन करेगा? क्या य समझ कोई बी० डी० ओ०, कोई कलक्टर या कोई दूसर कर्मचारी दे सकता है? यह समझ योजना द्वारा नहीं, सद् भावना द्वारा ही पैदा की जा सकती है। इस तरह की समभ पैदा करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

मनुष्य के आकार में जन्म ग्रहण करने से ही मनुष्य-जीवन नहीं बन पाता। जीवन तो निस्स्वार्थ सेवा से बनता है। आप सब सार्वजनिक रूप से लोक-जागरण का यह कार्य करें। आप जनता के उद्बोधक बनें।

गृहस्थ जीवन एक साधना-क्षेत्र है। यह एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। घर हमारा भागवत-साधना का सर्वोत्तम मन्दिर है। यदि हमारा घर हमारा आराधना-स्थल बन जायेगा तो हमारी सन्तति स्वयं ही उससे प्रेरणा पायेगी। उनके जीवन में प्रेम के, सद्भावना के और दिव्य जीवन के फूल खिलेंगे। ऐसा घर निश्चय ही भारत के पुनरुत्थान का सजीव एवं सक्रिय केन्द्र बन जायेगा।

आप सब ऋषियों की सन्तान हैं; इसलिए अपने अन्दर अध्यात्म की लौ जलाये रखें। आपकी आध्यात्मिकता को चोट पहुँचाने वाले जो भी व्यसन आप में हों, उनसे अपने आपको

सदा-सर्वदा के लिए मुक्त कर लेना चाहिए। व्यसन मानव के शत्रु हैं। हमारे बीच में कई प्रकार के दुर्व्यसन हैं। स्वार्थ और उसकी सिद्धि के लिए बोला जानेवाला झूठ मानव के सब सङ्कटों का कारण है। अतः प्रजा के जीवन में त्याग और निस्स्वार्थ-भावना लाने के लिए हमें काम करना चाहिए। जिस स्वार्थ-रहित जीवन को बापू ने राष्ट्र के लिए बताया और विनोबा जी ने जिसे आगे बढ़ाया है, उस काम में आप सबको लग जाना चाहिए। हम दाता बनें। हमारे जीवन में अपरिग्रह हो। लेने की अपेक्षा हम देने को अच्छा समझें। इस धारणा को जगाने का काम विनोबा जी ने भूदान-यज्ञ से प्रारम्भ किया और दान की इस भावना को जयप्रकाश बाबू ने चोटी पर पहुँचा दिया। विनोबा जी द्वारा परिवर्तित इस अनुकरणीय कार्य को देश के कोने-कोने में फैलाने के लिए सर्वोदय के कार्य-कर्त्ता चुपचाप कार्य कर रहे हैं। उस कार्य में आप सहयोग दें।

यदि आपके मन में यह शङ्का हो कि हम समाज की सेवा के लिए क्या काम करें तो उसके लिए सर्वोदय की योजना है। इन आदर्शों को घर-घर पहुँचाने के लिए सर्वोदय काम कर रहा है। आप लोग इसमें सभी तरह से सहयोग दे सकते हैं। जो लोग इस पर्वतीय प्रदेश के विकास के लिए चिन्तित हैं वे सर्वोदय के कार्यक्रम को अपनायें।

समाज के लिए भी हमें कुछ करना है। रोज-रोज ऐसा करने में दान का संस्कार जगने लगता है।

मैंने सुना है कि पर्वतीय प्रदेश में जुआ बहुत चलता है। पुराणों में एक कथा है कि द्वापर युग के समाप्त होने पर कलियुग ने प्रवेश करना चाहा। उस समय राजा परीक्षित राज्य करते थे। उन्होंने कलियुग को अपने राज्य में स्थान देने से इनकार कर दिया। जब कलि ने बार-बार प्रार्थना की कि उसे तो भगवान् की ओर से ही भेजा गया है, इसलिए टिकने के लिए स्थान तो मिलना ही चाहिए। परीक्षित ने जब यह पूछा कि तुम्हें रहने के लिए कौन-सा स्थान चाहिए। ‹दि भगवान् ने ही तुम्हें भेजा है तो किसी भी स्थान पर पड़े ‹ह सकते हो। तब कलि ने उत्तर दिया कि मैं सिर्फ इन छह ‹ानों में रहूँगा—(१) जहाँ जुआ खेला जाता हो, (२) ‹ाँ शराब पी जाती हो, (३) जहाँ स्वर्ण का काम होता हो, (४) जहाँ क्रूर व्यापार चलता हो, (५) जहाँ स्त्री का शरीर बेचा जाता हो तथा (६) हिंसात्मक खेल चलते हों। परीक्षित ने वचनबद्ध होने के कारण इसको स्वीकार कर लिया

है। हमें किसी के साथ भेदभाव नहीं बरतना चाहिए। मन्दिर में जाकर जिस भगवान् पर आप जल चढ़ाते हैं, वही भगवान् अछूत में भी विराजमान है। वेदों में भी यही लिखा है कि सब पर दया करो, सबसे प्रेम करो, सबमें एक ही तत्त्व को देखो। आत्मभाव से देखो। भगवान् राम ने भिलनी के जूठे बेर तक प्रेम से खा डाले, केवट को गले लगाया, रैदास को अपनाया। इस तरह हम अपने जीवन में समत्व प्रकट करें तो भारत की एकता सुरक्षित रहेगी और उस एकता से मङ्गलकारी शक्ति का निर्माण होगा। शिव-शक्ति का विकास होगा।

हमारे अन्त:करण में जो ऊँचे भाव तथा आदर्श हैं, उनको हमें तुरन्त कार्यान्वित करना चाहिए। सारे सद्गुण, यदि उनका जीवन में अभ्यास न किया जाय, तो विदा हो जाते हैं। *(Virtue withers away for want of its exercise)*। डा० एनीबेसेण्ट ने एक बार कहा था– "भारत की जड़ें धर्म में हैं। भारत से धर्म को निकाल दें तो भारत समाप्त हो जायगा।" मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि उत्तराखण्ड भारत की आध्यात्मिक राजधानी बने !

अल्मोड़ा—आम-सभा १३-१०-७२।

५-

राष्ट्र की सांस्कृतिक राजधानी

यह नवरात्रि-पूजा का समय है और इस पर्व के दिन ह
लोग यहाँ पर एकत्र हुए हैं। अतः इस सुन्दर अवसर पर ह
पहले दो-चार मिनट भगवती का कीर्त्तन कर लें, फिर निवेद
करेंगे। (कीर्त्तन)

हमारी संस्कृति का जो आदर्श है, उसका आपके जीव
में क्या स्थान होना चाहिए और हमारे जीवन-कार्यों में इ.
आदर्शों का क्या उपयोग है, इस विषय पर अपनी सेवा आपके
चरणों में अर्पित करूँगा। भारत की पुण्यभूमि में पैदा हुई
संस्कृति की अपनी एक विशेषता है जो आप अन्य संस्कृतियों
में नहीं पा सकते हैं। हमारी संस्कृति की उत्पत्ति दिव्य ज्ञान
में से हुई है। इसलिए हमारे धर्म को वैदिक धर्म कहते हैं।
वेद का अर्थ होता है ज्ञान। मानव और विश्व का क्या सम्ब-
न्ध है? मानव और विश्व की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? दृश्य
जगत् और दृश्य मानव के पीछे कौन-सा तत्त्व छिपा है? इन
प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए जिस ज्ञान का विकास हुआ, वही

री संस्कृति की आधार-शिला है। यह ज्ञान हमारे राष्ट्र अतुल्य धन है। हमारा वास्तविक ऐश्वर्य यही है। यह हमारी सांस्कृतिक विरासत है। असली भारतीय वे ही जो इस ज्ञान को समझने के प्रयास मे लगे हैं। अज्ञान रतीयता का अभावात्मक पहलू *(Negation)* है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा के रूप में जो यह ज्ञान है में तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है : पहला यह कि तुम रने वाले नाशवान् व्यक्ति नहीं हो। तुम तो अजर, अमर विनाशी हो—'अमृतस्य पुत्रः' हो। दूसरा तत्त्व यह है भगवद् अनुभव, दिव्यता की अनुभूति मानव-जीवन का कमात्र लक्ष्य है और तीसरा यह कि इस लक्ष्य को प्राप्त रने का मार्ग ही धर्म है।

आज पूरे संसार में निराशा फैली हुई है। उनकी संस्कृति ानवता का विकास भूल गयी है। केवल मशीनी विकास से ीवन कृत्रिम होता जा रहा है। राग-द्वेष बढ़ता जा रहा । इससे सारे ज्ञान-विज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है। इससे क भयानक परिस्थिति पैदा हो गयी है। व्याकुलता और य के वातावरण से मनुष्य घिर गया है। इस जाल को ाटने का एकमात्र मार्ग भारतीय संस्कृति का प्रचार है। श्चिम के लोग अणु-बम के भय के नीचे अनिश्चितता का ीवन जी रहे हैं। उनकी संस्कृति मारक है। भारतीय स्कृति तारक है। अतः प्रेम का सन्देश हर भारतीय का न्मसिद्ध कर्तव्य है। इससे पहले कि हम विदेशों में जायें में अपने ही देश में इसकी शिक्षा देनी चाहिए।

निसर्ग और अध्यात्म का मेल—यह नैनीताल नगरी देश की प्रमुख नगरी है। ब्रिटिश-काल में यह संयुक्त

आगरा व अवध की ग्रीष्मकालीन राजधानी रही है। पर्वतीय प्रदेशों की रानी यह नैनीताल नगरी नैसर्गिक सौन्दर्य से विभूषित है। मैदानों के बड़े-बड़े शहरों में मानव प्रकृति के साथ सम्भाषण नहीं कर सकता। वहाँ के शोरगुल, कोलाहल और सङ्घर्ष से ऊबकर प्रकृति से सम्बन्ध जोड़ने, उससे एकता अनुभव करने के लिए वह यहाँ आता है। वह यहाँ इसलिए आता है कि यहाँ की ताजगी का अनुभव करके वह अपना पुनर्निर्माण कर सके। यहाँ आकर वह शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति प्राप्त करता है और अपनी आध्यात्मिक शक्ति का पुनर्निर्माण करके वापस लौटता है।

हमारे देश की यह परम्परा रही है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से हमने आध्यात्मिक चेतना को जगाने के प्रयत्न किये हैं। इसलिए योगियों, सन्तों, साधकों और भक्तों ने हिमालय को अपनी तपोभूमि बनाया है। हम इस भूमि को एक दिव्य प्रदेश समझते हैं। यहाँ की हर चोटी पर सुरकण्डा, चन्द्रवदनी, पाषान देवी, नैनीदेवी और भगवान् शङ्कर के मन्दिर हैं। यह भगवद् भूमि है। सन्तों का निवास यहाँ है। यही भारत के लिए यहाँ की अमूल्यता है। अतः नैनीताल जैसी नगरी जो प्राकृतिक सौन्दर्य में मुख्य स्थान रखती है और पूरे उत्तराखण्ड के प्रशासन का केन्द्र भी है, आदर्श नगरी बननी चाहिए जिससे अन्य नगरों को भी प्रेरणा मिले। यहाँ के सांस्कृतिक विकास की योजना यहाँ की नगरपालिका को बनाना चाहिए जिससे कि लोगों को सदाचार की प्रेरणा मिले।

महिलाएँ सत्याग्रह करें : जो आसुरी सम्पत्ति हैं, व्यसन

हैं, धार्मिकता को चोट पहुँचाने वाली बातें हैं, उनको इस नगरी के जीवन से अलग कर देना चाहिए। पर्वतीय प्रदेशों के लिए शराब का प्रचलन एक महान् अभिशाप है। यहाँ की माताओं के परिश्रम से स्वास्थ्य और चरित्र के लिए जो शराब का एक अभिशाप था उसका उन्मूलन हुआ है। अब यहाँ के नागरिकों को भी इस सुरापान से मुक्त करना चाहिए। यह यहाँ के सामाजिक जीवन के लिए एक कलङ्क है। इसके लिए जागरूक नागरिकों को काम करना चाहिए। इसमें झिझकने की कोई बात नहीं है। आप सब बुद्धिशाली हैं। बैठकर योजना बनानी चाहिए कि किस तरह से यहाँ पर मद्यपान की समाप्ति हो। महिलाओं की शक्ति महान् है। वह देवी की शक्ति है। उनको इस काम के लिए सत्याग्रह और शान्तिपूर्ण आन्दोलन करना चाहिए।

अमेरिका में स्त्रियों का एक आन्दोलन चल रहा है 'नारी-मुक्ति आन्दोलन' *(Women's Liberation Movement)*। इस आन्दोलन के द्वारा वे स्त्रियों के लिए पुरुषों से आजादी चाहती हैं। महीने में एक दिन उनका *Tools down* का कार्यक्रम रहता है। इस दिन वे पुरुष के लिए घर में कोई काम नहीं करतीं। आप लोग सद्कार्य के लिए इस तरह का कार्य-क्रम अपना सकती हैं। घर में कोई शराबी है तो हम भोजन नहीं पकायेंगी और न ही भोजन करेंगी। अपनी शक्ति का इस तरह से प्रयोग सत्कर्मों में आपको करना चाहिए। शराब के विरुद्ध देवियों का मदिरा-विरोधी क्लब *(Anti-alcohol Club)* बनना चाहिए। रणचण्डी बनकर आपको इस पुनीत काम के लिए सङ्घर्ष करना चाहिए। शराब हमारी सभ्यता

राष्ट्र की सांस्कृतिक राजधानी

यह नवरात्रि-पूजा का समय है और इस पर्व के दिन हम लोग यहाँ पर एकत्र हुए हैं। अतः इस सुन्दर अवसर पर हम पहले दो-चार मिनट भगवती का कीर्त्तन कर लें, फिर निवेदन करेंगे। (कीर्त्तन)

हमारी संस्कृति का जो आदर्श है, उसका आपके जीवन में क्या स्थान होना चाहिए और हमारे जीवन-कार्यों में इन आदर्शों का क्या उपयोग है, इस विषय पर अपनी सेवा आपके चरणों में अर्पित करूँगा। भारत की पुण्यभूमि में पैदा हुई संस्कृति की अपनी एक विशेषता है जो आप अन्य संस्कृतियों में नहीं पा सकते हैं। हमारी संस्कृति की उत्पत्ति दिव्य ज्ञान में से हुई है। इसलिए हमारे धर्म को वैदिक धर्म कहते हैं। वेद का अर्थ होता है ज्ञान। मानव और विश्व का क्या सम्बन्ध है? मानव और विश्व की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? दृश्य जगत् और दृश्य मानव के पीछे कौन-सा तत्त्व छिपा है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए जिस ज्ञान का विकास हुआ, वही

हमारी संस्कृति की आधार-शिला है। यह ज्ञान हमारे राष्ट्र का अतुल्य धन है। हमारा वास्तविक ऐश्वर्य यही है। यह ज्ञान हमारी सांस्कृतिक विरासत है। असली भारतीय वे ही हैं, जो इस ज्ञान को समझने के प्रयास में लगे हैं। अज्ञान भारतीयता का अभावात्मक पहलू *(Negation)* है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा के रूप में जो यह ज्ञान है उसमें तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व हैं: पहला यह कि तुम मरने वाले नाशवान् व्यक्ति नहीं हो। तुम तो अजर, अमर अविनाशी हो—'अमृतस्य पुत्रः' हो। दूसरा तत्त्व यह है कि भगवद् अनुभव, दिव्यता की अनुभूति मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य है और तीसरा यह कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग ही धर्म है।

आज पूरे संसार में निराशा फैली हुई है। उनकी संस्कृति मानवता का विकास भूल गयी है। केवल मशीनी विकास से जीवन कृत्रिम होता जा रहा है। राग-द्वेष बढ़ता जा रहा है। इससे सारे ज्ञान-विज्ञान का दुरुपयोग हो रहा है। इससे एक भयानक परिस्थिति पैदा हो गयी है। व्याकुलता और भय के वातावरण से मनुष्य घिर गया है। इस जाल को काटने का एकमात्र मार्ग भारतीय संस्कृति का प्रचार है। पश्चिम के लोग अणु-बम के भय के नीचे अनिश्चितता का जीवन जी रहे हैं। उनकी संस्कृति मारक है। भारतीय संस्कृति तारक है। अतः प्रेम का सन्देश हर भारतीय का जन्मसिद्ध कर्त्तव्य है। इससे पहले कि हम विदेशों में जायं हमें अपने ही देश में इसकी शिक्षा देनी चाहिए।

निसर्ग और अध्यात्म का मेल—यह नैनीताल नगरी उत्तर प्रदेश की प्रमुख नगरी है। ब्रिटिश-काल में यह संयुक्त प्रान्त

आगरा व अवध की ग्रीष्मकालीन राजधानी रही है। पर्वतीय प्रदेशों की रानी यह नैनीताल नगरी नैसर्गिक सौन्दर्य से विभूषित है। मैदानों के बड़े-बड़े शहरों में मानव प्रकृति के साथ सम्भाषण नहीं कर सकता। वहाँ के शोरगुल, कोलाहल और सङ्घर्ष से ऊबकर प्रकृति से सम्बन्ध जोड़ने, उससे एकता अनुभव करने के लिए वह यहाँ आता है। वह यहाँ इसलिए आता है कि यहाँ की ताजगी का अनुभव करके वह अपना पुनर्निर्माण कर सके। यहाँ आकर वह शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति प्राप्त करता है और अपनी आध्यात्मिक शक्ति का पुनर्निर्माण करके वापस लौटता है।

हमारे देश की यह परम्परा रही है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से हमने आध्यात्मिक चेतना को जगाने के प्रयत्न किये हैं। इसलिए योगियों, सन्तों, साधकों और भक्तों ने हिमालय को अपनी तपोभूमि बनाया है। हम इस भूमि को एक दिव्य प्रदेश समझते हैं। यहाँ की हर चोटी पर सुरकण्डा, चन्द्रवदनी, पाषान देवी, नैनीदेवी और भगवान् शङ्कर के मन्दिर हैं। यह भगवद् भूमि है। सन्तों का निवास यहाँ है। यही भारत के लिए यहाँ की अमूल्यता है। अतः नैनीताल जैसी नगरी जो प्राकृतिक सौन्दर्य में मुख्य स्थान रखती है और पूरे उत्तराखण्ड के प्रशासन का केन्द्र भी है, आदर्श नगरी बननी चाहिए जिससे अन्य नगरों को भी प्रेरणा मिले। यहाँ के सांस्कृतिक विकास की योजना यहाँ की नगरपालिका को बनाना चाहिए जिससे कि लोगों को सदाचार की प्रेरणा मिले।

महिलाएँ सत्याग्रह करें : जो आसुरी सम्पत्ति हैं, व्यसन

हैं, धार्मिकता को चोट पहुँचाने वाली बातें हैं, उनको इस नगरी के जीवन से अलग कर देना चाहिए। पर्वतीय प्रदेशों के लिए शराब का प्रचलन एक महान् अभिशाप है। यहाँ की माताओं के परिश्रम से स्वास्थ्य और चरित्र के लिए जो शराब का एक अभिशाप था उसका उन्मूलन हुआ है। अब यहाँ के नागरिकों को भी इस सुरापान से मुक्त करना चाहिए। यह यहाँ के सामाजिक जीवन के लिए एक कलङ्क है। इसके लिए जागरूक नागरिकों को काम करना चाहिए। इसमें झिझकने की कोई बात नहीं है। आप सब बुद्धिशाली हैं। बैठकर योजना बनानी चाहिए कि किस तरह से यहाँ पर मद्यपान की समाप्ति हो। महिलाओं की शक्ति महान् है। वह देवी की शक्ति है। उनको इस काम के लिए सत्याग्रह और शान्तिपूर्ण आन्दोलन करना चाहिए।

अमेरिका में स्त्रियों का एक आन्दोलन चल रहा है 'नारी-मुक्ति आन्दोलन' *(Women's Liberation Movement)*। इस आन्दोलन के द्वारा वे स्त्रियों के लिए पुरुषों से आजादी चाहती हैं। महीने में एक दिन उनका *Tools down* का कार्यक्रम रहता है। इस दिन वे पुरुष के लिए घर में कोई काम नहीं करतीं। आप लोग सद्कार्य के लिए इस तरह का कार्यक्रम अपना सकती हैं। घर में कोई शराबी है तो हम भोजन नहीं पकायेंगी और न ही भोजन करेंगी। अपनी शक्ति का इस तरह से प्रयोग सत्कर्मों में आपको करना चाहिए। शराब के विरुद्ध देवियों का मदिरा-विरोधी क्लब *(Anti-alcohol Club)* बनना चाहिए। रणचण्डी बनकर आपको इस पुनीत काम के लिए सङ्घर्ष करना चाहिए
के खिलाफ है।

प्रकृति में हम देखते हैं कि हर प्राणी अपनी सुरक्षा का उपाय करता है; परन्तु मानव में यह क्या विचित्र बात है कि जो पदार्थ अपने लिए घातक हैं, स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले हैं तथा बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले हैं, उन्हीं को वह छोड़ना नहीं चाहता ? यह क्या भ्रान्ति है ? मानवता को बचाना हो तो हम सबको इसके लिए कुछ करना चाहिए। हर सभ्य शिक्षित व्यक्ति का यह मौलिक कर्त्तव्य है कि वह निर्भय होकर शान्तिमय तरीकों से इस दुष्प्रवृत्ति के निर्मूलन में प्रवृत्त हो जाय। व्यक्ति की सभ्यता की परख उसका आचरण है। जिसके अन्दर संयम है, वह सभ्य है। चरित्र ही संस्कृति का लक्षण है।

सारा पर्वतीय प्रदेश एक है। अभी मुझे उत्तर प्रदेश के इस पूरे पर्वतीय क्षेत्र में भ्रमण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मेरा अनुभव है कि इस सारे पर्वतीय प्रदेश की जनता एक है। जो भेद है वह प्रशासन की दृष्टि से है, मानव-कृत है, अतएव कृत्रिम है। अतः पूरे पर्वतीय प्रदेश की जनता को एक होकर यहाँ के विकास के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। जो वानप्रस्थ लोग हैं उनके पास ज्ञान, अनुभव व समय है। इसलिए कूर्माञ्चल प्रदेश के कुछ आदर्शवादी नवयुवकों और वानप्रस्थ लोगों को गढ़वाल प्रदेश में जाकर वहाँ के देहातों में भ्रमण करना चाहिए, वहाँ की प्रजा से सम्पर्क बनाना चाहिए। इसी भाँति गढ़वाल के युवकों और वानप्रस्थों को कूर्माञ्चल प्रदेश में आकर पर्यटन करना चाहिए। हम सब पर्वतीय प्रदेश के भ्रातृवृन्द हैं। हमें इसकी एकता के लिए काम करना चाहिए। यदि वानप्रस्थ लोग रचनात्मक कार्यक्रम अपनाकर समाज-सेवा के क्षेत्र में उतर जावें तो उनका बेड़ा पार हो

जायगा। वे धन्य हो जायेंगे। रिटायर्ड लोगों को इस लिए रिटायर्ड होना (अवकाश ग्रहण करना) है कि वे अधिक व्यस्त हो सकें *(Retired people must retire to get busy)* । जीवन क्रियाशीलता का ही दूसरा नाम है। वानप्रस्थ समाज का एक विशिष्ट वर्ग है, जिसके ज्ञान और अनुभव से समाज को लाभान्वित होने का अधिकार है। इसके साथ ही वानप्रस्थों को अपने आध्यात्मिक जीवन का विकास भी करना चाहिए। निवृत्ति के पथ पर तो चौथे आश्रम अर्थात् संन्यास आश्रम में जाना चाहिए।

यदि आपके मन में यह शङ्का हो कि हम किस तरह समाज की सेवा करें तो भारत के सुपुत्र और बापू जी के उत्तराधिकारी विनोबा जी ने इसका उत्तर दे दिया है। उन्होंने सर्वोदय की योजना हमारे सामने रखी है। आप सबसे मेरा निवेदन है कि सर्वोदय द्वारा समाज की सेवा कीजिए।

नैनीताल- ग्राम-सभा १४-१०-७२।

अविरोधी सेवा

सायंकाल का समय हमेशा ऐसा मुहूर्त्त था जिसमें पूज्य बापू जी चाहे जितने महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त हों, सब कार्यों को बन्द करके प्रार्थना में बैठ जाते थे। सब उनके साथ प्रार्थना में सम्मिलित हो जाते। यह उनका अचूक नियम रहा। इसी समय उनके शरीर की समाप्ति और प्रभु के साथ उनका मिलन हुआ। प्रातःकाल भी नित्यकर्मों से निवृत्त होने के पहले वे प्रार्थना में बैठ जाते थे। इस नाशवान्, अशाश्वत और अनित्य, परिवर्तनशील संसार से अपने मन को हटाकर भगवान् पर ध्यान करते थे। प्रार्थना करते थे, नामधुन गाते थे और कुछ भजन करते थे।

गाँधी जी का अन्तरङ्ग जीवन—

लोग महात्माजी के अन्तरङ्ग दर्शन पर बहुत कम सोचते हैं। गाँधी जी कोई पहलवान नहीं थे। प्रार्थना से ही उन्होंने शक्ति पायी थी। इससे ही उस दुबले वृद्ध शरीर के अन्दर एक आत्मबल रहा, जिसका सामना कोई नहीं कर सका। उन्होंने

जो कुछ किया, भगवान् की शक्ति से किया। उनकी शक्ति की उत्पत्ति का स्थान रामनाम था। अपनी प्रातःकालीन और सायंकालीन प्रार्थना में उन्होंने सर्वधर्म-समन्वय के तत्त्व को दाखिल किया। विविध धर्म संघर्ष बनने के स्थान में मानव की एकता के आधार बनें, इस बात पर उनका प्रयत्न रहा। भगवान् में अटल विश्वास, प्रार्थना द्वारा उनके साथ एक सम्बन्ध बनाना और उसके आधार पर अपना जीवन-कार्य सफल बनाना, यह गाँधीवाद की गुप्त आधारशिला है।

गाँधीजी कहा करते थे कि मेरे अन्दर से ईश्वर में जो श्रद्धा है उसे निकाल दें तो मैं बिलकुल खाली हो जाऊँगा *(Take away my faith in God and I am nothing.)* जो मुझे केवल राजनैतिक व्यक्ति समझते हैं, वे तो मुझे समझे ही नहीं। मैं तो सत्यमार्ग का राही हूँ। सत्य को खोजने वाले प्राचीन परम्परा के अनुसार मौन धारण कर लेते हैं, एकान्त जीवन बिताते हैं; परन्तु गाँधीजी ने कहा कि मैं सत्य की खोज जनता के बीच रहकर आँख खोलकर करना चाहता हूँ। यह सत्य सर्वव्याप्त है : **ईशावास्यमिदं सर्वं**। यह सर्वव्यापी तत्त्व जनता के अन्दर रहने के कारण मैं जनता की सेवा कर रहा हूँ। मेरी उपासना की रीति सेवा है। उन्होंने अपनी सेवा को सार्वजनिक कार्य नहीं समझा। रामनाम के साथ सेवा करते रहे। यह गाँधीजी का व्यक्तित्व है, जिसने मुझे आकर्षित किया। मैंने देखा कि गाँधी-जी तो भक्त हैं, ईश्वर के उपासक हैं। अतः वह मेरे आध्यात्मिक जीवन के अनुकूल ही होगा।

आज की हरिजन-पूजा के विषय में एक सज्जन का विचार मुझे बड़ा विचित्र लगा। उनका विचार है कि हरिजनों की पूजा से छुआछूत की समस्या नहीं सुलझती। पूजा करने का

मतलब यह नहीं है कि समस्या के हल के लिए कोई और उपचार नहीं करना है। जो भी उपचार आप करना चाहते हैं, उसे उत्तम भूमिका से कीजिए। आपकी समस्या भी हल होगी, साथ ही ईश्वर-भजन का लाभ भी मिलेगा। हरएक मानव अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार समाज की सेवा कर सकता है। हरिजनों का पाद-प्रक्षालन और पूजा तो मैंने की। मैं संन्यासी हूँ। विवाह तो कर नहीं सकता। मैं गृहस्थ होता और घर में तरुण लड़का होता तो मैं जरूर उससे कहता कि हरिजन लड़की से शादी करो। तरुण लड़की होती तो उससे कहता कि हरिजन लड़के से शादी करो। अब आप इसे चाहे मेरी कमजोरी समझें या जो भी समझें, परन्तु हरएक व्यक्ति जिस स्थान में है, जिस किसी भी रूप में समाज में काम कर रहा है, यदि सब मिलकर समाज की कमियों को दूर करने का प्रयत्न करें तो वह समस्या परिपूर्ण रूप से हल हो जायगी। हम सब की सेवा एक-दूसरे की विरोधी नहीं, एक-दूसरे की पूरक है। हम सब एक ही कार्य में लगे हुए हैं। हरएक व्यक्ति अपने-अपने स्थान से उसको सम्पन्न करने में लगा हुआ है। यदि हम प्रेम से इस काम को करेंगे तो गाँधीजी के स्वप्नों का भारत अवश्य प्रकट होकर रहेगा।

वास्तविक प्रगति क्रमिक विकास *(Evolution)* में है, न कि क्रान्ति *(Revolution)* में। क्रमिक विकास के माने हैं वृद्धि। वृक्ष पहले बीज रूप में रहता है। बीज से हम फल प्राप्त नहीं कर सकते, न पत्ते, न कली और न फूल ही प्राप्त कर सकते हैं। बीज को हम तोड़ दें तो न वृक्ष बन पायेगा, न फल, न फूल; परन्तु थोड़ी सावधानी के साथ यदि हम उसमें पानी डालते रहेंगे, बाड़ बनायेंगे, सेवा करेंगे, उसके लिए कार्य करेंगे

तो अपने आप वह फल देगा। अतः हमारे अन्दर थोड़ी शान्ति, थोड़ी सहनशीलता होनी चाहिए। इस भाँति हम जो कुछ प्राप्त करेंगे, वह स्थायी होगा। प्राकृतिक नियम के अनुसार यदि किसी चीज का विकास होगा तो वह कायम रहेगा। उससे मानव ऊपर उठेगा, यश पावेगा। क्रान्ति से कुछ चमत्कार भले ही हो जाय, लेकिन उससे स्थायी रूप से मानव-कल्याण नहीं हो सकता। इस विश्व में आप रहें या न रहें, विश्व की प्रक्रिया चलती रहेगी।

भौतिक शास्त्र में क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रसिद्ध नियम है। सामान्य भाषा में हम इसके लिए कहते हैं--"जैसा बोओगे वैसा काटोगे।" हमारी ओर से जो कुछ भी निकलेगा, वह अपना कार्य करके वापिस लौटेगा। हमारे अन्दर से द्वेष निकलेगा तो द्वेष ही हमारे पास लौटेगा। हमारे अन्दर से प्रेम निकलेगा तो प्रेम ही वापस आयेगा। धर्म की भाषा में हम कहते हैं कि जो कुछ हम कर्म करते हैं उसका फल हमें भोगना पड़ता है। दैवी विधान के साथ यदि हम अपने को अनुकूल कर लें तो उसकी शक्ति हमें मिलेगी। जो वस्तु प्रेम के द्वारा बनायी जाती है वह शाश्वत होती है। प्रकृति के नियम के अनुसार सब चीजें शनैः शनैः बढ़ती हैं।

स्वावलम्बी समाज बनायें—

भारत के निर्माण का सही काम पिछले पचीस वर्षों में नहीं हो सका। बापूजी ने जो मार्ग बतलाया था, उस पर हम नहीं चल सके। भारत सरकार भी वह काम नहीं कर सकी। कम-से-कम जनता तो उस काम को करे। भारत में जनता कितनी है और कर्मचारी कितने हैं? एक प्रतिशत कर्मचारी होंगे तो शेष निन्नानवे प्रतिशत क्या कर रहे हैं? सरकार को,

कर्मचारियों को दोष देने के स्थान पर तो यही अच्छा है कि हम स्वयं करना आरम्भ कर दें। अँधेरे को गाली देने के बजाय हम अपने आप को एक चिराग बना दें *(It is better to light a candle than to curse the darkness around you)*। अपने-अपने स्थान पर यदि सब लोग काम करते जायें तो चुपचाप क्रमिक विकास होता रहेगा। इस भाँति यदि आप रचनात्मक कार्य करेंगे तो भारत का भविष्य शीघ्रातिशीघ्र उज्ज्वल होगा।

पश्चिमी जगत् में आज मशीन प्रथम स्थान पर आ गयी है। मानव दूसरे स्थान पर आ गया है। मशीन ने थोड़े ही समय में चामत्कारिक रूप से उनके रहन-सहन का स्तर उठा दिया है। जो चीज पहले अनावश्यक थी, वह आज आवश्यक बन गयी है। यान्त्रिक प्रगति से उनकी जीवन-शैली भी कृत्रिम बन गयी है। साथ ही वे एक दुश्चक्र में फँस गये हैं। हमसे बीस गुना अधिक उनकी मासिक आय है फिर भी वे ऋणी ही रहते हैं। युद्ध-सामग्री बनाने वाली फैक्टरियों में उनके लाखों लोग लगे हुए हैं। वे सोचते हैं कि युद्ध बन्द हो जायगा तो उनका सारा समाज उलट जायेगा। वहाँ के जो विचारवान् लोग हैं, वे कह रहे हैं कि उनका दम घुट रहा है। वे लक्ष्यहीन भागे जा रहे हैं। उनकी यान्त्रिक सभ्यता का तरीका कभी भी टूट सकता है। भारत में हमें उसी यन्त्रीकरण की दिशा में नहीं भागना चाहिए। विशालकाय व जटिल यन्त्रों के बजाय छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों से हमें आत्मनिर्भरता की योजना बनानी चाहिए। भारत की निर्धनता इसी से दूर हो सकती है।

हमें जनता के अन्दर देश-प्रेम की भावना जागृत करनी चाहिए। भारत की जनता के प्रति प्रेम पैदा होना चाहिए।

लोगों में परस्पर संघर्ष न हो। स्वतन्त्र भारत का सबसे बड़ा अभिशाप पार्टीबाजी है। भारत की प्रजा का हृदय मिलना चाहिए। हम सब एक हैं। यह राष्ट्र हमारा परिवार है। दलों की आवश्यकता ही नहीं। दलवाद एक बीमारी है। सबमें भारत की संस्कृति के प्रति प्रेम हो। भारत की प्रजा के भविष्य के प्रति एक चिन्ता हो। यह अपने में एक शक्ति है।

साध्य-साधन की एकरूपता—

इतिहास की दृष्टि से एक महान् राष्ट्र की जनता के जीवन में पचीस वर्ष पाँच मिनट के बराबर होते हैं। इतिहास तो शताब्दियों से आँका जाता है। इतिहास की दृष्टि से तो स्वतन्त्र भारत एक बच्चा है। यदि हम सब लोग इस राष्ट्र के निर्माण में लग जायें तो अगले पचीस वर्ष में हम भारत की शकल बदल देंगे। इस पुण्य कार्य के लिए भगवान् से शक्ति लेनी चाहिए। नम्रतापूर्वक प्रार्थना द्वारा वह शक्ति हमें मिलेगी। इस प्रकार प्रेम द्वारा कार्य करने से आगे चलकर कोई खतरा नहीं उठाना पड़ेगा। यदि हम हिंसा, हत्या, जबर्दस्ती से काम करेंगे तो फिर इन्हीं शक्तियों से लड़ना पड़ेगा। जो साध्य हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसी के अनुसार साधन भी हमें अपनाना चाहिए। आज संसार में जो सङ्घर्ष या सङ्कट है, वह साध्य-साधन के परस्पर विरोध के कारण है। हम चाहते तो शान्ति हैं और मार्ग अपनाते हैं सङ्घर्ष का। इस रीति से शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती।

उत्तर काशी में हरिजन-पूजा के बाद का प्रवचन २-१०-१९७२।

७-

जीवन की बुनियाद

इस हाल (महाकक्ष) के नीचे मजबूत बुनियाद है। इमारत बनाने के काम में सबसे महत्व का भाग सबसे पूर्व जाता है। आपके जीवन की बुनियाद इस समय पड़ रही है। इस अवस्था में जो काम आप कर रहे हैं, वह जीवन की बुनियाद बनाने का काम है। इसलिए इसके निर्माण की कला जानना आवश्यक है। विद्यालय में जो कुछ सिखलाया जाता है, उसमें यह ज्ञान नहीं दिया जाता। पाठ्यक्रम की पुस्तकों द्वारा जो विषय आपको पढ़ाये जाते हैं उनसे जीवन की बुनियाद बनाने का ज्ञान नहीं प्राप्त होता। यह शिक्षा-प्रणाली अधूरी है। इस शिक्षा-प्रणाली द्वारा परीक्षा में पास होने पर नौकरी मिलने का साधन तो हाथ लग जाता है, परन्तु उससे आप ऊँचे नहीं उठ सकेंगे। यदि किसी व्यक्ति के पास आत्म-विकास की कला का ज्ञान नहीं है तो जो कुछ वह कमायेगा, उससे अपना ही शत्रु बन जायेगा।

शिक्षण के साथ-साथ मनुष्य के व्यक्तित्व की भिन्न-भिन्न

भूमिकाओं का विकास होना भी आवश्यक है। उसके हृदय की साधना होनी चाहिए, हृदय का विकास होना चाहिए, उसमें परोपकार की वृत्ति बढ़नी चाहिए। शारीरिक, मानसिक तथा सङ्कल्प शक्ति का विकास होना चाहिए। मनुष्य के व्यक्तित्व का पवित्रीकरण आवश्यक है। उसका निर्माणात्मक, सर्जनात्मक विकास होना चाहिए। इस तरह विद्यार्थी-जीवन केवल स्कूल की पढ़ाई और खेलकूद ही नहीं है, अपितु यह तो आनेवाले जीवन की तैयारी है।

शराब एक जहर है—

जीवन में जो भी कार्य किये जाते हैं, वे सब शरीर के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। जिस यन्त्र के द्वारा काम लेना है, उसे ठीक रखना चाहिए, तब ही वह काम देगा। शरीर को स्वस्थ और बलवान् रखना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। आहार से शरीर पुष्ट होता है। आहार के स्थान पर यदि कोई विष-पान करे तो मर जावेगा। आज के संसार में एक जहर फैला है जिससे मानवता को पीड़ा पहुँच रही है। वह जहर है—शराब। शराब में तेज अम्ल तत्त्व है। यह पेट के आन्तरिक भाग को गलाने लगता है। पेट के अन्दर फोड़ा हो जाता है। जिगर (हृदय) के जो कोश *(Cells)* हैं, उनको वह मारने लगता है। अन्त में वृक्क *(Kidney)* में बेकार हो जाता है। आदमी जो दूसरे प्राणियों से श्रेष्ठ माना गया है, उसका कारण यह है कि मनुष्य में विवेक-शक्ति है। इस विवेक-शक्ति से मनुष्य बहुत ऊँचा उठ सकता है। विचार-शक्ति मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा प्रकट होती है। शराब का जो तेज अम्ल तत्त्व (तेजाब) होता है, वह मस्तिष्क को खराब करने लग जाता है। मस्तिष्क के जो कोश *(Cells)*

होते हैं, उनके गुण तेजी से घटने लगते हैं।

शक्तियों का संरक्षण करें—

मन को सदा साफ रखना चाहिए। विचार ऐसे हों जो सदा उन्नति की ओर ले जायें। जीवन की गति ऊर्ध्वगामी होनी चाहिए। जीवन में स्फूर्त्तिदायक आदर्श रखना चाहिए। ऊर्ध्वगामी प्रगति के लिए शक्ति चाहिए। शक्तियाँ तीन प्रकार की हैं :

१. जिनका दिल साफ होता है वे सदा निडर होते हैं। पवित्र मन के द्वारा प्राप्त निर्भयता एक शक्ति है।

२. सब शक्तियों की मूल शक्ति ब्रह्मचर्य है। शक्तियों का संरक्षण होना चाहिए। संयमी जीवन वाले के अन्दर ब्रह्मचर्य परिपूर्ण रहता है। ब्रह्मचारी सब कुछ कर सकता है।

३. चित्तशुद्धि तथा ब्रह्मचर्य के लिए बल व प्रेरणा विश्वात्म-शक्ति से प्राप्त करें। भक्त लोग उस शक्ति को भगवान् कहते हैं, वेदान्ती आत्मा कहते हैं। उस शक्ति के साथ हम सम्बन्ध रखें। वह शक्ति नाम या मन्त्र के रूप में है। 'ओ३म् श्रीरामाय नमः' मन्त्र के द्वारा भी हम परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। जो भी अनन्त दैवी शक्ति है, इस मन्त्र के द्वारा प्रकट हो सकती है। हमारे जीवन में सफलता के लिए ये तीन रहस्य हैं।

राजकीय इण्टर कालेज,
पुरोला ३०-९-७२।

धन्य हैं वे !

आपके जीवन में, आपका भगवान् के साथ जो आध्यात्मिक सम्बन्ध है, उसे कभी नहीं भूलना चाहिए। आपको समझना चाहिए कि आप एक अविनाशी सत्ता के अंश हैं। भगवान् के दिव्य स्वरूप में जो भी सद्गुण हमारी कल्पना में हैं, वे सब दिव्य गुण आपके अन्दर हैं। केवल कमाई करना ही आपके जीवन का ध्येय नहीं है। आपका असली कार्य तो है अपने अन्दर की दिव्यता को, भगवद्तत्त्व को जागृत करना। बाह्य जगत् में आपका धन्धा भले ही कुछ हो, पर अन्दर के जगत् में आत्मा की जागृति ही आपका धन्धा है।

आप सब को प्रातः तथा सायंकाल आत्मचिन्तन, आत्मा के विषय में ध्यान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातःकाल उस दिव्य तत्त्व को नवीन रूप से जागृत करने का कार्य करना चाहिए। मानव की मलिनता में नहीं, वरञ्च उसमें छिपे दिव्य तत्त्व को प्राप्त करने में ही आपकी विशेषता है। झूठ, राग, द्वेष, स्वार्थ —ये सब पतन के मार्ग हैं। ये क्षुद्रता के लक्षण हैं। इन सबका

परिणाम दुःख और पश्चात्ताप के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

आज न्याय के क्षेत्र में विषमता व्याप्त है। उसमें असत्य है। जो सत्य से अलग हो जाता है, उसको ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं बचा सकते। जो सत्य को अपनाता है, स्वयं भगवान् सदा उसकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। इसलिए सत्य ही परमेश्वर है, ऐसा समझकर आप लोगों को अपना कार्य करना चाहिए।

न्याय और सत्य –

न्यायालयों में जो न्यायाधीश तथा वकील हैं, उनके अन्दर एक गलत विचार घर कर गया है। वे सोचते हैं कि हम यहाँ कानून का अमल करवाने के लिए बैठे हैं। *(We are here to administer the Law)* यह एक गलत विचार है। कानून तो प्रजा के हित के संरक्षण के लिए *(to safeguard the interest of the society)* है। प्रजा की हित-साधना तो केवल सत्य से ही हो सकती है। यदि प्रजा के हित की साधना असत्य से होती हो तो समझना चाहिए कि उस समाज की रचना में ही भूल है। कानून का कर्त्तव्य असत्य के समर्थन के स्थान में सत्य का पक्ष लेना है। जहाँ कानून सत्य को पकड़े रखता है, वहीं वह सही न्याय कर सकता है।

[य]ज्ञमय जीवन—

हम सब भारतीय हैं। हमारे व्यक्तित्व में भारतीयता का मौलिक स्थान है। इस भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर ही हमें अपना काम करना चाहिए। भारतीयता का मौलिक सार-

भूत तत्त्व है परोपकार। भारतीय वह है जो परोपकार को ही अपने जीवन का सबसे बड़ा तत्त्व मानता है। परोपकार का अर्थ है यज्ञ-भाव। इसका अर्थ है अपने व्यक्तित्व से, अपनी सम्पत्ति से दूसरों को कुछ न कुछ देते जाना *(Self offering in all aspects)*। परोपकार का अर्थ है कि मुझे अपनी बुद्धि और शक्ति से कुछ न कुछ समाज को देना चाहिए। भूमि, अन्न, ज्ञान, समय व श्रम—जो कुछ भी मेरे पास है उसमें से कुछ न कुछ समाज के चरणों में अर्पित करना चाहिए।

संसार में जो भी इन्सान हैं, वे भगवान् के प्रतिनिधि हैं। अतः समाज-रूपी भगवद्तत्त्व के लिए कुछ समर्पण करना यज्ञ है। यज्ञ का आदर्श भारतवर्ष का अत्यन्त महत्वपूर्ण आदर्श है। जीवन स्वयं में भी एक यज्ञ ही है। यज्ञ का आदर्श व्यापक रूप से जीवन में छाया हुआ है। इस सृष्टि में हम क्या देखते हैं? वृक्षों पर जो सुन्दर और मीठे फल लगते हैं, उनका उप-भोग क्या वे वृक्ष स्वयं ही करते हैं? नहीं, वे उन सब फलों को बाँट देते हैं। नदी अपने जल से दूसरों के खेतों को सींचती रहती है। प्रकृति में सब जीव, वनस्पति अपनी आहुति देकर, अपने को समाप्त कर इस यज्ञचक्र को कायम रखते हैं। केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसने इस चक्र को रोक दिया। वह देने की बात भूल गया। यज्ञ को उसने छोड़ दिया। इस कारण ही सब सङ्घर्ष आरम्भ हुआ।

मनुष्य ने यज्ञ को छोड़कर स्वार्थ को अपना आदर्श बना लिया। इसी से सारी मुकदमेबाजी, झूठ और ईर्ष्या है। स्वार्थ से जो आज सम्पत्ति कमा लेता है, उसका आज समाज में सम्मान है; परन्तु यह सब हमारे देश की संस्कृति के आदर्श के अनुकूल नहीं है। हमारे जीवन के जितने भी क्षेत्र हैं, चाहे वह

परिणाम दुःख और पश्चात्ताप के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

आज न्याय के क्षेत्र में विषमता व्याप्त है। उसमें असत्य है। जो सत्य से अलग हो जाता है, उसको ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं बचा सकते। जो सत्य को अपनाता है, स्वयं भगवान् सदा उसकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। इसलिए सत्य ही परमेश्वर है, ऐसा समझकर आप लोगों को अपना कार्य करना चाहिए।

न्याय और सत्य -

न्यायालयों में जो न्यायाधीश तथा वकील हैं, उनके अन्दर एक गलत विचार घर कर गया है। वे सोचते हैं कि हम यहाँ कानून का अमल करवाने के लिए बैठे हैं। *(We are here to administer the Law)* यह एक गलत विचार है। कानून तो प्रजा के हित के संरक्षण के लिए *(to safeguard the interest of the society)* है। प्रजा की हित-साधना तो केवल सत्य से ही हो सकती है। यदि प्रजा के हित की साधना असत्य से होती हो तो समझना चाहिए कि उस समाज की रचना में ही भूल है। कानून का कर्त्तव्य असत्य के समर्थन के स्थान में सत्य का पक्ष लेना है। जहाँ कानून सत्य को पकड़े रखता है, वहीं वह सही न्याय कर सकता है।

यज्ञमय जीवन—

हम सब भारतीय हैं। हमारे व्यक्तित्व में भारतीयता का मौलिक स्थान है। इस भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर ही हमें अपना काम करना चाहिए। भारतीयता का मौलिक सार-

परिणाम दुःख और पश्चात्ताप के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

आज न्याय के क्षेत्र में विषमता व्याप्त है। उसमें असत्य है। जो सत्य से अलग हो जाता है, उसको ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं बचा सकते। जो सत्य को अपनाता है, स्वयं भगवान् सदा उसकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। इसलिए सत्य ही परमेश्वर है, ऐसा समझकर आप लोगों को अपना कार्य करना चाहिए।

न्याय और सत्य -

न्यायालयों में जो न्यायाधीश तथा वकील हैं, उनके अन्दर एक गलत विचार घर कर गया है। वे सोचते हैं कि हम यहाँ कानून का अमल करवाने के लिए बैठे हैं। *(We are here to administer the Law)* यह एक गलत विचार है। कानून तो प्रजा के हित के संरक्षण के लिए *(to safeguard the interest of the society)* है। प्रजा की हित-साधना तो केवल सत्य से ही हो सकती है। यदि प्रजा के हित की साधना असत्य से होती हो तो समझना चाहिए कि उस समाज की रचना में ही भूल है। कानून का कर्त्तव्य असत्य के समर्थन के स्थान में सत्य का पक्ष लेना है। जहाँ कानून सत्य को पकड़े रखता है, वहीं वह सही न्याय कर सकता है।

यज्ञमय जीवन—

हम सब भारतीय हैं। हमारे व्यक्तित्व में भारतीयता का मौलिक स्थान है। इस भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर ही हमें अपना काम करना चाहिए। भारतीयता का मौलिक सार-

उद्योग का क्षेत्र हो चाहे व्यापार का, चाहे शिक्षा
न्याय का, सब में यश का आदर्श बनाकर रखना च।

सङ्घर्ष की समाप्ति ही वकीलों का असली काम—

आपमें से अनेकों व्यक्ति वकील का धन्धा करते
का असली काम क्या है ? ईसा के उपदेशों का एक
है, 'पहाड़ी पर के उपदेश' *(Sermon on the Moun*
एक स्थान पर ईसा कहते हैं : 'धन्य हैं वे जो शा
प्रयत्न करते हैं'—*Blessed are the peace makers.* य
का असली काम है। साधारण जनता की समझ
होती। छोटी-छोटी बातों को लेकर वे झगड़ पड़ते
मुकदमेबाजी करते हैं, जिसमें उनकी शक्ति, सम्पति
का नाश होता है। वकीलों को चाहिए कि वे अपने मु
(वादार्थियों) की पूरी बात सुनें। फिर दोनों पक्षों के
एक साथ बैठकर परस्पर परामर्श करें और दोनों पक्षों
समझौते का विचार रखें। इस काम के लिए वे फीस
हैं। इस तरह ली गयी फीस मीठी होगी, अमृत के
होगी। अपने मुवक्किलों में समझौता कराने का काम
कर सकते हैं; क्योंकि उनके पास ज्ञान है और उन्हें का
पूरी-पूरी जानकारी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य
समाज को रचनात्मक सेवा देता जाय तो समाज में एक
और भ्रातृभाव का साम्राज्य होगा। कलकत्ता के सु
वकील सी० आर० दास इसके उदाहरण थे।

आजकल हमारे देश में पश्चिम की नकल करने की
बहुत बढ़ गयी है। पाश्चात्य समाज से हृदय की कोमल
नाएँ पूरी तरह से विदा हो गयी हैं। वहाँ लोगों के पास

विशेष ज्ञान है, उसका उपयोग वे अपना उल्लू सीधा करने में करते हैं; परन्तु भारतीय संस्कृति का आदर्श यह है कि व्यक्ति अपने विशेष ज्ञान का उपयोग सेवा के साधन के रूप में करे। समाज की असली सम्पत्ति सामाजिक जीवन में सुन्दरता और मधुरता है। इस तरह का सामाजिक जीवन समरसता में से आता है।

अल्मोड़ा की कचहरी में मुवक्किलों और वकीलों
के बीच दिया गया प्रवचन १३-१०-७२।

उद्योग का क्षेत्र हो चाहे व्यापार का, चाहे शिक्षा का हो चाहे न्याय का, सब में यज्ञ का आदर्श बनाकर रखना चाहिए।

सङ्घर्ष की समाप्ति ही वकीलों का असली काम—

आपमें से अनेकों व्यक्ति वकील का धन्धा करते हैं। वकील का असली काम क्या है? ईसा के उपदेशों का एक प्रमुख अङ्ग है, 'पहाड़ी पर के उपदेश' *(Sermon on the Mount)*। उसमें एक स्थान पर ईसा कहते हैं: 'धन्य हैं वे जो शान्ति के लिए प्रयत्न करते हैं'—*Blessed are the peace makers.* यही वकीलों का असली काम है। साधारण जनता की समझ अधिक नहीं होती। छोटी-छोटी बातों को लेकर वे झगड़ पड़ते हैं और मुकदमेबाजी करते हैं, जिसमें उनकी शक्ति, सम्पति और समय का नाश होता है। वकीलों को चाहिए कि वे अपने मुवक्किलों (वादार्थियों) की पूरी बात सुनें। फिर दोनों पक्षों के वकील एक साथ बैठकर परस्पर परामर्श करें और दोनों पक्षों के बीच समझौते का विचार रखें। इस काम के लिए वे फीस ले सकते हैं। इस तरह ली गयी फीस मीठी होगी, अमृत के समान होगी। अपने मुवक्किलों में समझौता कराने का काम वकील कर सकते हैं; क्योंकि उनके पास ज्ञान है और उन्हें कानून की पूरी-पूरी जानकारी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य के द्वारा समाज को रचनात्मक सेवा देता जाय तो समाज में एकता, प्रेम और भ्रातृभाव का साम्राज्य होगा। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध वकील सी० आर० दास इसके उदाहरण थे।

आजकल हमारे देश में पश्चिम की नकल करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गयी है। पाश्चात्य समाज से हृदय की कोमल भावनाएँ पूरी तरह से विदा हो गयी हैं। वहाँ लोगों के पास जो

विशेष ज्ञान है, उसका उपयोग वे अपना उल्लू सीधा करने में करते हैं; परन्तु भारतीय संस्कृति का आदर्श यह है कि व्यक्ति अपने विशेष ज्ञान का उपयोग सेवा के साधन के रूप में करे। समाज की असली सम्पत्ति सामाजिक जीवन में सुन्दरता और मधुरता है। इस तरह का सामाजिक जीवन समरसता में से आता है।

अलमोड़ा की कचहरी में मुवक्किलों और वकीलों
के बीच दिया गया प्रवचन १३-१०-७२।

९-

मेरा सन्देश : भारतीयता

अल्मोड़ा का नाम स्वामी विवेकानन्द ने अमर बनाया। वे विदेश से लौटने पर कोलम्बो से अल्मोड़ा तक विजय-यात्रा पर आये। आपने मेरा आशीर्वाद माँगा है। मैं आशीर्वाद देने वाला महापुरुष नहीं हूँ। मैं तो आपका एक भाई हूँ। मैं भ्रातृत्व के रूप में आपको शुभ कामनाएँ दे सकता हूँ। आपके लिए भगवान् से प्रार्थना कर सकता हूँ। मेरा सन्देश भारतीयता का सन्देश है।

भारत के लिए एक जीवन-कार्य *(Mission of Life)* है। उस जीवन-कार्य को आप सब लोगों के माध्यम से पूरा होना है। यह जीवन-कार्य है—विश्व में आत्मज्ञान का प्रकाश। संसार को यह दान हम तभी दे सकते हैं, जब हम संस्कृति-सम्पन्न व्यक्ति हों। विपन्न व्यक्ति दूसरों को क्या दान दे सकता है? पाश्चात्य जगत् में बाहर से उनका जीवन पूर्ण है, किन्तु जीवन में अर्थ नहीं है।

सुरक्षा और विकास—

आप सब सरकारी नौकरियों में लगे हैं। नौकरी केवल वेतन पाने का तरीका नहीं। यह तो भारतीय बन्धुओं की सेवा का कार्य है। इस सेवा को प्रेम और उत्साह से करना चाहिए। आप सब इस प्रदेश के विकास-कार्यों से सम्बन्धित हैं। आज विकास ने नया अर्थ और नया महत्व ले लिया है। भारत की सुरक्षा का अर्थ केवल पेड़, पत्थर, नदी, नालों की सुरक्षा ही नहीं है। सुरक्षा का अर्थ भारतीय संस्कृति और जीवन-पद्धति की सुरक्षा से है, भारतीय धर्म और मूल्यों की सुरक्षा से है। भारतवर्ष के आदर्श संसार के लिए आवश्यक हैं। पश्चिम में विज्ञान की जो प्रगति हुई है वह तथाकथित विज्ञान का मार्ग असफल हो गया है। दो भयानक युद्ध वहाँ हो चुके हैं। एक दूसरे के विनाश की तैयारी में वे खड़े हैं। उनके अन्दर व्याकुलता है। व्यक्ति हो, समाज हो, राष्ट्र हो, उनमें चैन नहीं है।

आपके राष्ट्र में २५०० वर्ष पूर्व एक महापुरुष ने कहा : 'द्वेष से द्वेष नहीं मिट सकता।। ईर्ष्या, मत्सर तथा बलात् जो प्राप्त किया जाता है, वह मङ्गलदायी नहीं हो सकता।' *(That which is obtained by sword shall be perished by sword.)* पाश्चात्य जगत् के लोग संयम को मूर्खता समझते हैं, परन्तु हमारी संस्कृति में संयम को बहुत ऊँचा स्थान है। वहां के मनोवैज्ञानिक संयम को अवैज्ञानिक बतलाते हैं। भारतीयता संयम, सदाचार और चरित्र-निर्माण के द्वारा व्यक्ति को आदर्श मानव बनाकर परोपकार का सन्देश देती है। भारतीय जीवन-मूल्य व्यक्ति के अन्दर एक आकांक्षा पैदा करते हैं कि शरीर छोड़कर जाने के पहले मैं अपने पास

मै दूसरों को क्या दे सकता हूँ।

पुण्य भूमि भारतवर्ष में उत्तराखण्ड अत्यन्त पुनीत माना जाता है। अपने जीवन में यहाँ की संस्कृति को जागृत करके भारतवर्ष के लिए आपको आशीर्वाद देना चाहिए। सीमा प्रदेश में एक नास्तिक विचारधारा आक्रमण करने की तैयारी कर रही है। उससे रक्षा करने के लिए आप जनता में भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम जगायें। लोगों में अन्धविश्वास है, व्यसन हैं, जो शारीरिक आरोग्य के लिए बहुत हानिकारक हैं। शराब के प्रयोग से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, पेट में कैंसर हो जाता है और अन्त में मस्तिष्क में बिगाड़ उत्पन्न होने से व्यक्ति पागल बन जाता है।

चीन हमारा पड़ोसी देश है। वहाँ अफीम का बहुत प्रचलन था। उन लोगों ने प्रयत्न करके उससे छुटकारा पाया। हमारी सरकार तो जन-कल्याणकारी सरकार है। उसका ध्यान पैसे के बजाय प्रजा के कल्याण की ओर होना चाहिए। यदि कुछ चीजें ऐसी हैं जो प्रजा के स्वास्थ्य को समाप्त कर रही हैं तो पैसे की आय की अपेक्षा उनपर रोक लगा देना अधिक अच्छा है।

पर्यटन-उद्योग —

पर्वतीय प्रदेशों के विकास की जब बात होती है तो पर्यटन-उद्योग पर पर्याप्त बल दिया जाता है और कहा जाता है कि पर्यटकों को आकृष्ट करने के लिए शराब की उपयोगिता है; परन्तु समझना चाहिए कि उत्तराखण्ड प्रदेश शराब के लोभ से टूरिस्ट को नहीं खींचता। यहाँ के निसर्ग का सौन्दर्य, यहाँ ... और

खींचती है। वनों को सुरक्षित रखकर यहाँ के सौन्दर्य में वृद्धि करनी चाहिए। शहरों के लोग शान्ति तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए लालायित रहते हैं। इसी की खोज में वे यहाँ आते हैं। भीड़, कोलाहल तथा नाच-गान के लिए वे यहाँ नहीं आते। इन्हें तो वे कहीं पर भी प्राप्त कर सकते हैं। हमारे पर्यटन-उद्योग के सम्बन्ध में व्यापारिक दृष्टिकोण न अपनाकर विवेक-सम्मत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

अपने बच्चों का शिक्षण इस प्रकार से करें कि वे पूरे भारत के साथ एकात्मता का अनुभव करें। नारियों का उत्थान आवश्यक है। समाज की प्रगति की कुञ्जी नारी-जागरण में है। समाज के पूरे जीवन पर माताओं का प्रभाव पड़ता है। माताओं का प्रभाव ही बच्चों के व्यक्तित्व को आकार देता है। माताओं के जीवन के विकास की दृष्टि से कम से कम जो किया जा सकता है, वह है बिजली और छोटी-छोटी मशीनों की सुविधाएं उपलब्ध करना जिससे कि उनके काम का बोझ कम किया जा सके। लघु पैमाने पर बिजली और छोटी मशीनें गाँव-गाँव में फैला दीजिए।

छुआछूत एक कलङ्क—

लोगों में पारस्परिक प्रेम और एकता की भावना पैदा करनी चाहिए। यदि राष्ट्र को सुदृढ़ बनाना है तो लोगों के बीच खड़ी दीवारें *(Barriers)* मिटनी चाहिए। छुआछूत एक ऐसी ही दीवार है जो भारतीय बन्धुओं को एक दूसरे से अलग करती है। हमें प्रेमपूर्वक छोटे-बड़े के भेदभाव को दूर करना चाहिए। क्या बताऊँ आपको ? समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग है कोढ़ी; परन्तु उनमें भी यह प्रचलन है कि एक दूसरे के

का छुआ नहीं खाता। इस समस्या के कारण ही हमें कोढ़ियों की बस्ती (ब्रह्मपुरी, भजनगढ़ और ढालूवाला) में उनके रहने के लिए अलग-अलग ब्लाक्स (घर) बनाने पड़े।

अन्त में मेरा कहना आपसे यही है कि आप जिस भी काम में लगे हैं, उसे राष्ट्रीय सेवा मानकर करना चाहिए। उसको राष्ट्र-सेवा ही नहीं आध्यात्मिक सेवा भी बनायें। इस प्रकार अपने काम के प्रति आपका नया दृष्टिकोण बनना चाहिए।

शिक्षण और विकास-कार्यों में अनुभव-सम्पन्न लोग लगें

उत्तराखण्ड की इक्कीस दिन की यात्रा में मुझे एक अनुभव यह आया है कि शिक्षण और विकास के कार्यों का उत्तरदायित्व बहुत ही कम आयु के युवकों को सौंपा गया है। ये दोनों काम ऐसे हैं जिनमें पर्याप्त अनुभव, संयम, विवेक और व्यवहार-कुशलता की आवश्यकता है; परन्तु युवावस्था स्वयं के निर्माण की अवस्था होती है। उस आयु में वह इधर-उधर के संसार को देखना चाहता है, तब आश्चर्य नहीं कि वह शहर में सिनेमा देखने चला जाय, सैर के लिए चला जाय तथा जो कार्य उसको सौंपा गया है, उसकी ओर अधिक ध्यान न दे। यह सब स्वाभाविक है। इसमें उसको दोष नहीं देना चाहिए। इसमें कुछ अपवाद हो सकते हैं। शिक्षा का विषय तो बहुत महत्व का है। इस कार्य में कम-से-कम पचीस वर्ष से कम आयु के लोगों को लगाना ही नहीं चाहिए। छोटे-छोटे बच्चों के जीवन-निर्माण को उनके हाथ में सौंपने के लिए

वे उपयुक्त अधिकारी नहीं हैं।

एक दूसरी बात भी मैंने अनुभव की। ब्रिटिश रा
समय से अधिकारियों के ठहरने के लिए स्थान-स्थान पर
बँगले बने हैं; परन्तु अब स्वाधीनता के बाद भी अधि
लोग उन्हीं में जाकर ठहरते हैं। प्रजा को अपनी सम
लेकर वहाँ भागना पड़ता है। इससे अधिकारियों को
की समस्याओं का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो पाता।

अधिकारियों को एकान्त में स्थित डाकबँगलों में ठह
के बजाय गाँवों में अपना कैम्प लगाना चाहिए। जब द
करें तो खाने-पीने का सामान अपने साथ ले जा सकते
या गाँव के लोगों से कह सकते हैं कि उनके खाने-पीने, र
का प्रबन्ध करें। यदि ग्राम में रहने में असुविधा हो तो र
में सोने के लिए डाकबँगले का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु
में ग्राम के अन्दर कैम्प लगाकर काम करें। इससे प्रजा अ
अधिकारियों में निकटता पैदा होगी, समस्या की सही ज
कारी होगी तथा लोगों का कष्ट दूर होगा।

नरेन्द्रनगर—ग्राम र
८-११-७

११-

शिक्षा का लक्ष्य : दिव्यता की जागृति

आप सब युवक तथा विद्यार्थी हैं। इस अवस्था की जो विशेषता और महत्व है, उसे आप पहचानें। विद्यार्थी के रूप में आपकी यह काम की अवस्था है। इन विद्यालयों में तो रहना केवल तात्कालिक है। विद्यार्थी-जीवन आगामी अवस्था के लिए तैयारी करने का समय है। इस अर्थ से आप इस अवस्था को समझें तो आपकी दृष्टि दूसरी ही होगी। किसी भी प्रगति के कार्य में जो प्राथमिक और प्रारम्भिक अवस्था है, वही मुख्यतम अवस्था होती है। कोई भी शिल्पकार जब इमारत बनाने की योजना बनाता है, तो निर्माण-कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व भूमि खोदकर आधारशिला रखता है। इमारत कितनी दृढ़ बनेगी, यह आधार (नींव) पर निर्भर है। आपके विद्यार्थी-जीवन का पूरे जीवन के साथ वही सम्बन्ध है, जो नींव का मकान के साथ है। यह कार्य आप स्वयं ही कर सकते हैं। दूसरा कोई आपके लिए काम नहीं कर सकता। हाँ, दूसरे लोग इसमें सहायक अवश्य हो सकते हैं। इसके लिए

आवश्यकता है ।

मनुष्य भगवान् की विचित्र सृष्टि है । उसमें तीन तत्त्वों का समन्वय है ।

(१) **निकृष्ट प्रवृत्ति**—नैतिक दृष्टि से बहुत स्थूल निकृष्टता भी मानव में है । भूख, प्यास, थकान, नींद, प्राण-रक्षा की आकांक्षा, इन्द्रिय-भोग की प्रवृत्ति—ये सब बातें पशुओं में भी हैं । यदि मनुष्य में भी केवल यही बातें रहें, तो पशु और मनुष्य में क्या अन्तर रह जायगा ?

(२) **विचार-शक्ति**—इसके द्वारा मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है ।

(३) **दिव्यता**—वास्तविक शिक्षा वह है जो हमारे अन्दर के तीसरे तत्त्व को जागृत करने का मार्ग बतलाये । आधुनिक शिक्षा से तो हममें विधि उद्योगों को करने की योग्यता आती है; परन्तु वास्तविक मानव बनने के लिए तो दूसरे ही प्रकार की शिक्षा आवश्यक है । वास्तविक शिक्षा केवल स्मृति को भरने की प्रक्रिया मात्र नहीं है । असली शिक्षा का काम तो मानव-स्वभाव में निहित गुणों को प्रकट करना है । शिक्षण की प्रक्रिया द्वारा गुणों को भीतर से बाहर प्रकट किया जाता है, बाहर से भीतर नहीं डाला जाता *(Education is something inside out, not outside in)*.

मैं आपके सामने एक प्रश्न रखता हूँ । जो विचार-शक्ति आपने पायी है, वह विचार-शक्ति आपको पशुओं से निराला बनाती है या उत्कृष्ट बनाती है ? यदि बुद्धि की प्रगति मानव को पशुओं से उत्कृष्ट बनाती है तो हमें इतिहास की ओर ध्यान देना होगा । आज हम सब पश्चिम के पुजारी हैं *(We are all*

the boot-lickers of white man). हम अन्धेपन से उसे स्वीकारते हैं। यह हमारी मानसिक रचना का एक अङ्ग बन गया है। इसका ऐतिहासिक कारण यह है कि हम उनके गुलाम रहे हैं। उन्होंने हमारी संस्कृति के प्रति हममें घृणा की भावना पैदा की। लार्ड मैकाले ने हमारी शिक्षा की योजना ही इस तरह बना दी कि हम अपने शासकों के एक अच्छे नौकर बन सकें।

बुद्धि के साथ सद्गुणों का मेल—

ढाई-तीन सौ वर्ष से पश्चिम में विज्ञान और तकनीक की बहुत प्रगति हुई है। उसका परिणाम क्या हुआ है? पश्चिमी सभ्यता ने पिछले पचास वर्षों में ही दुनिया को दो बड़ी लड़ाइयां दी हैं। यह क्या बात है? क्या यही मानव-सभ्यता का प्रदर्शन है? मानव-विकास का लक्षण क्या यही है? क्या यह कार्य मानव को पशु से श्रेष्ठ बनाता है? यह बुद्धि, विचार-शक्ति तभी मानव को श्रेष्ठ बनायेगी, जब वह सात्त्विक गुणों से युक्त हो; उसमें दया, प्रेम, सहानुभूति तथा प्राणिमात्र के साथ एकता की भावना का विकास हो। मानव की प्रगति तथा उसका व्यवहार इस आधार पर हो तभी सात्त्विक सद्-गुणयुक्त बुद्धि से वह श्रेष्ठ बनेगा। उसकी बुद्धि की शक्ति यदि लोभ और द्वेष-भावना के साथ जुड़ी रहे तो यह मानव के पतन की सोपान बन जायगी।

पाश्चात्य यान्त्रिक सभ्यता हमारे लिए बड़ी दुःखदायी है। उसका परिणाम घोर सङ्कट है। उस सङ्कट से वहाँ का मनुष्य अभी तक अपने को उबार नहीं पाया है। जो लोग यह भी नहीं जानते कि वास्तविक शान्ति क्या है, उनकी सभ्यता

के प्रति हमारा आकर्षित होना उचित नहीं है। श्रेष्ठ बनने के लिए बुद्धि के साथ सद्गुणों का मेल भी होना चाहिए। आपका जो निजी स्वरूप है, वह न विचार है न भावना है। वह शरीर मन और बुद्धि से अतिरिक्त एक अमूल्य स्वरूप है। वह दिव्यता है। मानव एक दिव्य ज्योति, विचार और भावना-शक्ति तथा पाशविक शक्ति का मिश्रण है। मनुष्य मूलत: हड्डी-माँस का पुतला न होकर अजर, अमर अविनाशी दिव्य तत्त्व है। मैं कौन हूँ? मैं अमर आत्मा हूँ। यह हमारी संस्कृति का केन्द्रीय तत्त्व है। हमारे देश के बाहर इसका अभाव है। पाश्चात्य देशवासी जीवन का अर्थ नहीं जानते। एक निराशा, एक शून्यता उनके जीवन में है।

सारे संसार में सुख-प्राप्ति की आकाँक्षा है। सुख की प्राप्ति और दु:ख की निवृत्ति की आकाँक्षा सबकी है; परन्तु अभी तक कहीं भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता नहीं मिल पायी है। दु:खों से निवृत्ति तो आत्मज्ञान से ही सम्भव है। मानव का हृदय परिपूर्ण हो जाता है। वह आप्तकाम, कृतकृत्य हो जाता है *(He transcends all desires)*. पशुता का निर्मूलन और मानवता का परिशोधन, दिव्यता का विकास, यही जीवन का परम लक्ष्य है।

पश्चिम के लोग अपनी संस्कृति के कारण भयभीत हैं। वे अपने ही बनाये हुए जाल में फँस गये हैं और बड़ी आशा से पूर्व की विचारधारा की ओर देख रहे हैं। सबसे अधिक भारत की ओर उनकी दृष्टि है, परन्तु यहाँ के समाज ने पुरानी आदतें नहीं छोड़ी हैं। बड़ों का जीवन जम गया है। वे पक्की ईंट बन चुके हैं। अत: आप लोग अपना जीवन अपने हाथ में लें। दूसरों के हाथों में उसे न सौंपें। अपने अन्दर

स्वराज्य उत्पन्न करें। इसके लिए सांस्कृतिक ज्ञान देने वाले ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। दूसरों की जूठन पर पलने वाले न बनें *(Do not be a borrower)* ।

प्रत्येक विचार-धारा में अच्छा भी होता है और बुरा भी। विज्ञान, शास्त्र, विचार तो बहुत हैं। अतः आप लोगों को सारभूत तत्त्व ही ग्रहण करना चाहिए। पाश्चात्य विचार और संस्कृति की अन्ध-स्वीकृति से लाभ नहीं हो सकता। हमारी बुनियाद तो भारतीय संस्कृति होनी चाहिए। उस बुनियाद के ऊपर आप जो कुछ भी बनाना चाहें, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

जीवन में सफलता पाने के लिए हमारे व्यक्तित्व का एकीकरण होना चाहिए और काया, वाचा, मनसा हमें उसी में संलग्न रहना चाहिए।

शिक्षकों व विद्यार्थियों की सभा,
पी०आई० कॉलेज, टिहरी ४-१०-७२।

अनिश्चय के बीच निश्चय

सारे संसार में एक प्रकार की अनिश्चितता फैली हुई है। हर राष्ट्र इससे भयभीत है। हम सब जानते हैं कि इस अनिश्चितता की स्थिति ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया है। नेहरू जी ने विश्वास किया कि चीन-भारत-मैत्री से संसार का अभ्युदय होगा। हम सब अपना गौरव रखते हुए अपने भाग्य का निर्माण कर सकेंगे। भारत और चीन की मैत्री पर उन्होंने बहुत विश्वास रखा और सारे भारत की प्रजा को इसका विश्वास दिलाया था। 'हिन्दी चीनी भाई भाई' का नारा लगाया था, परन्तु १९६२ में इतिहास ने क्या दिखाया? चीन के द्वारा विश्वासघात किया जाना नेहरू जी की शरीर की शान्ति का एक कारण बना। उस समय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने कुछ बातें हमारे सामने रखी थीं। उन्हें ही मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि इस सारी अनिश्चितता के बीच कुछ बातें निश्चित हैं। एक बात निश्चित है कि एक

दिन तुम्हारा शरीर समाप्त हो जायगा, तो आप जब तक जीवित हैं तबतक क्या कर रहे हैं, इस बात का विचार करना चाहिए। जीवन का जो लक्ष्य है उसकी प्राप्ति के लिए जो करना है, व्यावहारिक जीवन में जो हमारा कर्त्तव्य कर्म है, जो धर्म है, उसे हमें टालना नहीं चाहिए। उसमें देर नहीं करनी चाहिए। हमारे लिए भगवान् ने यहाँ पर सीमित समय दे रखा है।

मृत्यु के लिए कोई नियम नहीं है। किस दिन हमको जाना पड़ेगा, यह निश्चित नहीं है। शरीर नाशवान् है, इसलिए जितनी जल्दी सत्कार्य किया जा सके, उतनी जल्दी उसे करना चाहिए। थोड़े ही दिन जब यहाँ रहना है, तब व्यर्थ किसी के साथ क्या वैर करना ? जिस तरह हमने इस संसार को पाया, जाने से पूर्व इसको और सुन्दर बनाकर जावें। अपने विचार, वाणी और कार्य द्वारा, जो कुछ इस व्यावहारिक जगत् की भूमिका है, वैर, क्रोध, द्वेष के बजाय कुछ शान्ति और प्रेम छोड़कर जायें।

हम शाश्वत और नित्य वस्तु से ही चिर-सुख प्राप्त कर सकते हैं। इच्छाओं को पूरा करने से सच्चा सन्तोष और तृप्ति मिल जायगी, इसका निश्चय नहीं है। मानव की इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है। मानव की इच्छाएँ, तृष्णाएँ एक जलती हुई अग्नि की तरह हैं। इच्छा-तृष्णा का स्वभाव ज्वाला जैसा है। घी-तेल डालने से वह और जोर से जलने लगती है। इच्छा की ज्वाला की शान्ति तृष्णा के त्याग से ही हो सकती है। तृष्णा के त्याग के लिए सफल साधना जीवन की सादगी है। जीवन में यह दृष्टिकोण होना चाहिए कि संसार के पदार्थों में से कम-से-कम किन पदार्थों से मेरा जीवन सुखदायी हो सकता है।

भारतीय संस्कृति की एक देन यह है कि व्यक्ति का जीवन किस तरह का होना चाहिए। मानव-जीवन में मानव को किन तत्त्वों के लिए प्रयत्न करना चाहिए, इसका स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है। मानव-जीवन के लक्ष्य का चित्र भारतीय ऋषियों ने हमारे सामने इन चार रूपों में रखा है :

१. मनुष्य-जीवन का लक्ष्य ज्ञान-प्राप्ति है,

२. जो ज्ञान प्राप्त किया उसको प्रयोग में लाना,

३. उससे प्राप्त अनुभव से समाज की सेवा करना, तथा

४. इन सब कार्यों को समाज को अर्पण करने के बाद संसार से विमुख होकर मञ्जिल की ओर दृष्टि रखना।

जीवन में प्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रम में ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना होता है। दूसरे गृहस्थाश्रम में उस ज्ञान का प्रयोग करके कुछ अनुभव प्राप्त किये जाते हैं। तीसरे वानप्रस्थ-आश्रम में उन अनुभवों के आधार पर समाज की सेवा करनी चाहिए और अन्तिम संन्यास-आश्रम में प्रभु के समीप पहुँचना चाहिए। वानप्रस्थी लोगों का समाज के लिए अत्यन्त महत्व है। वानप्रस्थ की फिर से पुष्टि होनी चाहिए, तब बहुत सी समस्याएँ स्वतः ही हल हो जावेंगी।

टिहरी ४-१०-७२।

१३-

सर्वोदय-सेवकों से

हमारी संस्कृति में एक वस्तु पर, एक तत्त्व पर काफी जोर दिया गया है। मानव-जीवन के किसी भी क्षेत्र में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए जो भी चेष्टा करें, उसमें सफलता पाने के लिए यह तत्त्व अपरिहार्य माना जाता है। इस तत्त्व के साथ-साथ अन्य कुछ दैवी सम्पत्तियाँ भी हैं। उनके साथ किस प्रकार इस तत्त्व को जोड़े रखें, हमारे पूर्वजों ने इसपर भी विचार किया है। आध्यात्मिक जीवन में उस तत्त्व को निष्ठा कहते हैं। किसी सिद्धान्त तथा मार्ग को हम अपनाएँ तो उसमें निष्ठा होनी चाहिए। किसी महात्मा को गुरु मान लिया तो जीवन-पर्यन्त उस महात्मा के प्रति निष्ठा होनी चाहिए। उपासना के लिए एक बार जो साधन चुन लिया, उसमें निष्ठा होनी चाहिए। मन्त्र में अटल निष्ठा होनी चाहिए। यह तत्त्व हमारी संस्कृति में व्याप्त है। इस पर बहुत जोर दिया जाता है, अन्यथा आधे मार्ग में ही प्रगति रुक जायेगी। मार्ग-भ्रष्ट होकर जीवन-दिशा

स्वामी विवेकानन्द के गुरु रामकृष्ण परमहंसदेव ने क
है कि पानी चाहिए तो एक स्थान पर खोदो। उसी स्थान
दस फीट, पन्दरह फीट, बीस फीट खोदो। एक स्थान पर पा
नहीं निकलता है तो दस जगह खोदो। किसी एक लक्ष्य-प्राि
के लिए प्रयत्न करते हैं तो उस प्रयत्न को बनाये रखना है
हमारी जो शक्तियाँ हैं, उन्हें उसी एक कार्य में केन्द्रित रखन
चाहिए। कार्य की दृष्टि से अकेला रहना ही पड़ता है। भक्ति
सम्प्रदाय में भी कहा गया है कि अनन्य भक्ति वह है जो एक वे
ऊपर हो। इसी को अव्यभिचारिणी भक्ति कहा गया है। जब
तक एक कार्य में हम स्थिर नहीं रहते, तब तक हमारे जीवन
की हानि ही है। सब वर्गों में एक निष्ठा के प्रचार की बहुत
आवश्यकता है। तभी जाकर श्रम का पूर्ण परिणाम निकल
सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र में विशेष कार्य कर सकता
है, यदि उसका परिपूर्ण व्यक्तित्व उस कार्य में निमग्न हो जाय।
इसके लिए बाधक कोई विचार-धारा न हो तो उसमें रुचि लेनी
चाहिए। परिपूर्ण विश्वास के बिना हमारी प्रवृत्ति सफल नहीं
होगी।

यह मैं विशेष रूप से बापू-विनोबा जी के कदमों पर चलने
वाले सर्वोदय के प्रतिनिधियों से कहता हूँ। चार-छः दिनों के
सम्पर्क में मुझे सर्वोदय के भाइयों के पास ऐसा भी साहित्य
मिला जिसको सर्वोदय के भाइयों के पास नहीं आना चाहिए।
निरीश्वरवादी साहित्य के पास नहीं जाना चाहिए। 'उस
साहित्य में क्या है, जरा देख लें' इस विचार से भी उस साहित्य
को नहीं पढ़ना चाहिए। हमने भगवद्भक्ति में जीवन लगाया
है, लेकिन मन तो बड़ा चञ्चल होता है। श्रद्धा, भक्ति बहुत
संवेदनशील होती है। असली श्रद्धा तब बनती है, जब भग-

वत्साक्षात्कार हो जाता है *(Absolute faith is only after God-Realisation)*। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थापित होने के बाद जो संन्यास में आते हैं, उनके लिए कहा गया है कि उन्हें स्त्रियों की सङ्गति में नहीं बैठना चाहिए। स्त्रियों की सङ्गति से भी अधिक हानिकारक है निरीश्वरवादियों की सङ्गति *(Never keep company of those who make fun of your Sadhana).*

मैं ब्रह्मचर्य के विरुद्ध कोई काम नहीं कर रहा हूँ, इतने से ही सन्तोष नहीं मानना चाहिए। उसके लिए ज्वलन्त आकाँक्षा *(Great spirited desire for virtue)* होनी चाहिए। आदर्शमय जीवन के वास्ते जोश रहेगा, तब कहीं-न-कहीं पहुँच सकते हैं। अपने सिद्धान्त में श्रद्धा और विश्वास बहुत सुरक्षित रखना चाहिए। एकनिष्ठा, अव्यभिचारिणी श्रद्धा और संस्कार की रक्षा करनी चाहिए। सर्वोदय के प्रति निष्ठा ही आपका ऐश्वर्य है।

कभी-कभी इस तरह के कार्यक्षेत्र में बहुत कम लोग उतरते हैं। कलकत्ता में कोई संन्यासी हो तो उसके लिए बहुत कठिन हो जायगा। इस क्षेत्र में लोग कम ही आते हैं। कार्य करते-करते निराशा आती है तो उससे भयभीत नहीं होना चाहिए। थोड़ी सामान्य सूझबूझ का प्रयोग करना चाहिए। आपके काम का एक भाग यह भी है कि आप स्थानीय लोगों में से ही सहयोगी प्राप्त करें। तब आपका अकेलापन हट जायेगा।

जब मैं दस वर्ष पूर्व अमेरिका में था तो उस समय वहाँ साम्यवादियों का भय व्याप्त था। हमने वहाँ कहा कि जिस तरह आप लोग आज रह रहे हैं, उसमें बच नहीं सकेंगे। सरकार बचाव के लिए कुछ कर रही है; परन्तु सामान्य जनता तो खाने-पीने, नाचने-गाने में व्यस्त है। इसके विपरीत वे

(साम्यवादी) तो क्रियाशील रहते हैं। यदि शैतान दिन-रात कभी सोता नहीं है तो आस्तिक को कम से कम पचास प्रतिशत काम करना ही चाहिए। जब आप अपने दृष्टिकोण के अनुसार क्रियाशील होंगे तो सफल हो सकेंगे। आपकी विचारधारा युवकों में, विद्यार्थियों में पहुँचेगी तो उनका उद्धार हो जायगा। पतिव्रता की भाँति ही हमारी भी दृष्टि होनी चाहिए।

'एको देवः शिवो वा केशवो वा।' एक पन्थ, एक गुरु, एक मन्त्र, एक साधना होनी चाहिए। जन्माष्टमी के अवसर पर हम कृष्ण की पूजा करते हैं, नवरात्रि में देवी की भक्ति करते हैं, शिवरात्रि आती है तो शिवपुराण आ जाता है। इस भाँति औरों की ओर हमारा सहिष्णुता का भाव होना चाहिए, किन्तु निष्ठा तो 'एक' ही की होनी चाहिए। बाकी कार्य की ओर दूर से ही राम-राम, और हमारे काम के अनुकूल कोई कार्य हो तो उसमें सहयोग देना चाहिए।

सर्वोदय आश्रम, उत्तरकाशी
प्रार्थना-प्रवचन ३-१०-७२।

१४-

मुख में राम—हाथ में काम

मानव-जीवन महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मिला हुआ एक सर्वोत्तम साधन है। हमारे सभी व्यवहार हमें उस लक्ष्य की ओर ले जावें, तभी जीवन सफल हो सकता है। इस दृष्टि से हम अपने जीवन के ऊपर दृष्टिपात करें तो मानव-जीवन में सबके साथ व्यवहार अपने हृदय से जानबूझ कर उठायी हुई साधना है, ऐसा नहीं लगता। अधिकांश को तो लक्ष्य का ध्यान ही नहीं है, फिर कैसे वे लोग अपने जीवन को अर्थपूर्ण रीति से दिशा सहित बना सकते हैं? वे यह कार्य या तो भय से करते हैं या लालच से कर सकते हैं। हमसे कोई शक्तिशाली करा रहा है। कुछ मानव मजबूरी से कार्य कर रहे हैं। कुछ यह मानकर चल रहे हैं कि शायद यही रीति है—रहन-सहन की। कुछ ममता-आसक्ति के वास्ते काम करते हैं। माँ बच्चों के लिए कार्य करती है। वह ममता के नाते काम करती है। कुछ लोग दया से करते हैं; क्योंकि वे दूसरों के कष्ट को सहन नहीं कर पाते। उनके हृदय

बहुत कोमल हैं। कोई-कोई बाहर की धकेल से नहीं, बल्कि उनमें कुछ आदर्शवाद आ जाता है। माँ और अपनी मातृ-भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है : **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'**। नवयुवकों में भी इसी प्रकार की भावना भरी जाती है। कोई उससे भी ऊपर उठकर कहते हैं, 'धरती हमारी माता है, विश्व हमारा घर है, मानवता हमारा परिवार है।' इसलिए मानव-मात्र की सेवा, उसके लिए मर मिटने की भावना से कर्म करते हैं।

ये सब कर्म एक से एक उत्तम हैं। सबसे उत्तम यह है कि हम इस प्रपञ्च को, इस जीवन को, एक और गहरे स्तर में समझ पावें। देखें और समझें कि प्रपञ्च हमारा स्थान है या नहीं। हमारे लिए एक रास्ता है। हम इस संसार में पथिक हैं और अपनी राह मञ्जिल की एक साधना होनी चाहिए। सही मार्ग पकड़ना चाहिए। इस शरीर के साथ ही हमारा सम्बन्ध नहीं है। जन्म की घटना *(Accident of birth.)* के कारण सम्बन्ध है। यह शरीर एक पोशाक की तरह है।

अपना वास्तविक स्वरूप समझ कर, चाहे मजबूरी से कार्य हो, चाहे दया से काम हो, उसे उत्साह के साथ करना मेरा कर्त्तव्य है। कर्म तो वही रहता है, परन्तु दृष्टि में परिपक्वता और भावना में परिवर्तन के कारण यह कर्म नया स्वरूप धारण कर लेता है। यह जीवन में सफलता का रहस्य है। ऐसा जीवन साधनामय जीवन, योगमय जीवन बन जाता है। ऐसा जीवन, हमारी संस्कृति में बताया गया, उत्तम जीवन है। तभी तो महात्मा जी का जीवन गीता से ओतप्रोत रहा है। सर्वसाधारण मानव के व्याव-

हारिक कर्म के प्रति उनको एक नयी दृष्टि गीता ने दी थी। भारतीय होने के नाते ईश्वर-प्रेम, भक्ति, ध्यान, भगवद्भजन, प्रार्थना, उपासना—हमारी श्वास है। यह हमारी आधार-शिला है। इस युग का धर्म—मुख में राम और हाथ में काम है।

प्रातःकालीन प्रार्थना-प्रवचन
गोपेश्वर, ७-१०-७२।

१५.

सज्जन शक्ति का सङ्गम

'संघे शक्तिः कलौ युगे'—

इस युग में मनुष्य को अपने सांसारिक कार्यों के वि
क्षेत्रों में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रह
धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी अ
विकट समस्याएं हैं। इस सारी परिस्थिति को देखकर ल
को लगता है कि हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। लोगों
लगता है कि मानवता सर्वनाश की ओर जा रही है।

इस स्थिति का उपचार करना एक व्यक्ति की दृष्टि से
ही असाध्य व असम्भव लगे, लेकिन व्यष्टि के लिए जो असा
है समष्टि के लिए वही साध्य हो जाता है। जब सज्जन ल
मिलकर काम करना प्रारम्भ कर देते हैं तो उसके पीछे
रहस्यमय शक्ति काम करने लगती है। इसीलिए तो भगवान्
कहा कि तुम कार्य करते जाओ, फल की आशा मत रखो।

एक तागा इतना कमजोर होता है कि वह कुछ नहीं क
सकता; परन्तु कई तागे मिलकर जब रस्सी बन जाते हैं त

एक चमत्कार होने लगता है। जञ्जीर हाथी को भी बाँध लेती है। यदि जञ्जीर की एक कड़ी सोचने लगे कि मैं तो एक छोटी सी कड़ी हूँ, अतः मैं क्या कर सकती हूँ ? मैं भला हाथी को कैसे बाँध सकती हूँ ? लेकिन समझना चाहिए कि एक कड़ी यदि अपने को अलग कर ले तो सारी जञ्जीर का कार्य निष्फल हो जायगा। अनेक कड़ियों की एकत्रित शृङ्खला से ही हाथी को बाँधा जा सकता है।

शक्ति तो हमारे पास है। समस्या यह है कि उसे एक दिशा में प्रवाहित कैसे किया जाय ? इसकी समझ सर्वसाधारण में नहीं है। शक्ति का सदुपयोग किस तरह हो इसकी समझ सर्व-साधारण में नहीं होती। यह योजना कार्यक्षेत्र में कार्य कर रहे विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा ही बनायी जानी चाहिए। उस योजना को बनाकर वे सर्वसाधारण के सामने रखें। एक कड़ी का काम इतना ही हो सकता है कि वह सोचे कि आसपास की कड़ी से वह अलग न हो जाय। यह किसी भी व्यक्ति का तात्कालिक कर्त्तव्य है। इसलिए जनता में जागृति और जन-सङ्गठन द्वारा सत्यकार्य में लग जाना चाहिए। सङ्गठित जनता कार्यक्षेत्र में उतरती है तो उस समय यह सावधानी बरतनी आवश्यक होती है कि उसकी शक्ति सही दिशा में प्रवाहित हो सके। जनता के अन्दर अनुशासन रहे, अन्यथा जनता की शक्ति के सदुपयोग के स्थान में दुरुपयोग भी हो सकता है। फिर उसका परिणाम अच्छा नहीं निकल सकता। अनुचित उपाय से एक उचित लक्ष्य की प्राप्ति वाञ्छनीय नहीं है।

जन-शक्ति के द्वारा किये गये कार्य भी प्रेम के द्वारा ही होने चाहिए। वह विनाशकारी नहीं होना चाहिए। उससे किसी प्रकार का विनाश या हिंसा नहीं होनी चाहिए। सत्यकार्य का

प्रारम्भ भी सुखदायी होना चाहिए, मध्य भी सुखदायी होन चाहिए और अन्त में सुखदायी होना चाहिए। हमारा को भी काम विनाशात्मक, घृणा व हिंसा पैदा करने वाला नहीं होना चाहिए। नहीं तो कार्य तो सध जायेगा, परन्तु उसके बाद द्वेष पैदा हो जायेगा। इसलिए जन-शक्ति के द्वारा कोई भी सत्कार्य करने के साथ-साथ समाज के अन्दर पवित्र वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

यदि हम समाज में जागृति पैदा करते हैं, सज्जनों का सङ्गठन करते हैं और जनता की सङ्गठित शक्ति का सदुपयोग करते हैं तो असाध्य कुछ भी नहीं रह जाता। सब कुछ सम्भव हो जाता है। कोई भी एक व्यक्ति दुनिया की समस्याओं को हल नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति को केवल अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए। हम समाज को कुछ न कुछ अर्पित करने का अपना कर्त्तव्य पूरा करते जायें। इससे देने वाला और लेने वाला धन्य हो जाता है। जब तक हम दूसरों से जुड़े हैं तब तक हम कमजोर नहीं हैं; क्योंकि जब तुम दूसरों के साथ जुड़ते हो, उस समय तुम भगवान् के साथ जुड़ जाते हो।

प्रार्थना-सभा : कोटद्वार
१६-१०-७२।

१६-

राम बादशाह

हमारी यह सभा भारत के एक उज्ज्वल ब्रह्मज्ञानी पुरुष के निवास-स्थान पर हो रही है; यह हम अपना सौभाग्य मानते हैं। रामतीर्थ जी ने अपनी अन्त:चेतना को, उसका शरीर के साथ जो अध्यास है उससे मुक्त करके अपनी दिव्य भूमिका में स्थापित कर चुके थे। उनके लिए शरीर तो था ही नहीं। वे जानते थे कि मैं नाशवान् शरीर नहीं हूँ। मैं आत्मतत्त्व हूँ। ऐसे महापुरुषों का चैतन्य स्वरूप सदा जगत् के साथ सम्वन्धित रहता है; क्योंकि वे कण-कण के साथ अपना एकत्व स्थापित कर चुके होते हैं। स्वामी राम सदा एकत्व में ही मस्त रहे। भेददृष्टि उनके अन्दर नहीं रह गयी थी। इस महापुरुष ने भारत के वेदान्त की ज्योति को इतर राष्ट्रों को दिखाया, औरों को भी प्रकाश दिखाया। जिस स्थान पर हम बैठे हैं, वह स्थान उनके चैतन्य स्वरूप से भरा हुआ है। रामतीर्थ हमारे लिए जिस ज्ञान का ऐश्वर्य छोड़कर गये, उसपर हमें विचार करना है।

प्रार्थनामय जीवन—

थोड़े ही दिनों में हम उनकी शताब्दी मनायेंगे। दीपाव के दिन से उनकी शताब्दी मनाने की योजना बनायी जा र है। यह हमारा सौभाग्य है कि इस समारोह को मनाने से ृ ही हमें इस स्थान पर बैठने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आ जो प्रार्थना आपने की है (प्रार्थना परिशिष्ट में देखें); उ प्रार्थना की भावना आप में पूरी तरह जागृत होनी चाहिए ऐसा भाव होना चाहिए कि भगवान् आपके सामने खड़े हैं, ज चाहिए वह देने के लिए तैयार हैं। अपनी दृष्टि को उनकी ओर उठाकर माँग करनी चाहिए। प्रार्थना दिल की आवाज होनी चाहिए जिससे कि प्रार्थना आपके जीवन में सक्रिय हो जाय। प्रार्थना स्मृति से नहीं आनी चाहिए। उसको केवल मात्र रट लेने से कोई लाभ नहीं। उसको भगवान् के चरणों में पहुँचना चाहिए, जिससे कि हमारा जीवन हर समय ताजा और सृजनशील रहे। प्रार्थना में जल्दी नहीं करनी चाहिए। जो वाक्य हम वाह्यतः मुख से कहते हैं उसको हृदय में अनुभव करना चाहिए। आज के सूर्योदय के समय हमारा नया जन्म हुआ है। इसलिए आदर्श के प्रति हममें नया उत्साह, कर्त्तव्य के प्रति हममें नया रुख (दृष्टिकोण) आना चाहिए। प्रार्थना इस नयी स्फूर्ति का एक साधन है।

अहिंसा, सत्य आदि जो एकादश व्रत हैं उनकी व्याख्या बापू जी ने 'मङ्गल प्रभात' में कर रखी है। उसको प्रतिदिन पढ़ना चाहिए। जिस भाँति आप गीता, विष्णुसहस्रनाम का पाठ करते हैं, उसी तरह 'मङ्गल प्रभात' का भी नित्य पाठ करना चाहिए। ये जो एकादश व्रत हैं, ये हमारी भारतीय संस्कृति को संक्षेप में हमारे सामने रख देते हैं।

रामतीर्थ जी की एक मुख्य शिक्षा यह है कि जो भी अच्छा काम हम करना चाहते हैं, उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। सब कार्य से दिल को स्फूर्ति मिलनी चाहिए। जीवन-पथ पर हमें निर्भय होकर सहर्ष प्रवेश करना चाहिए। भय तो अज्ञान का ही एक रूप है। अपनी दिनचर्या में सदा प्रसन्न रहना चाहिए। प्रसन्न मुद्रा बनाये रखने का अभ्यास करना चाहिए। हृदय में प्रसन्नता के अतिरिक्त अन्य कोई भावना नहीं होनी चाहिए। जिस ओर ही दृष्टि फेरें, उधर अपना आत्मबन्धु परमात्मा ही दिखायी देना चाहिए। आनन्द का यह सन्देश ही राम बादशाह का सबसे बड़ा सन्देश है। वे आनन्द के व्यापारी थे। मनुष्य की सहज अवस्था आनन्द की अवस्था है। इस आनन्द का रहस्य क्या है ? जब हम कार्यक्षेत्र में उतरते हैं तो कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनसे हमारे मन को अफसोस होता है; परन्तु सोचने की बात है कि हमें कितने दिन यहाँ रहना है। दो दिन रहकर फिर चले जाना है। दो दिन का डेरा है यहाँ। इसलिए आनन्द को बढ़ाते जाओ। हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिए। निराश कभी मत होना। सारे जगत् का बोझा तुम्हारे कन्धे पर नहीं है। इसी को स्वामी राम व्यावहारिक वेदान्त कहते थे।

निराशा के अंधेरे में भी आशा का दीप—

वेदान्त केवल निराशा का सिद्धान्त है *(Vedanta is a doctrine of perfect hopelesness)*। व्यक्ति निराश क्यों होता है ? क्योंकि उसमें आशा है। आशा रखना ही गलत है। तुम्हें तो काम करना है। सामने जो काम आता है उसे करो। अपने आपको कर्त्ता मत समझो। जब तुम्हारे अन्दर कोई आशा नहीं रहेगी तो निराशा आ ही नहीं सकती। फल की आकांक्षा

रहेगी तो निराशा आयेगी ही। वेदान्त की दृष्टि से यही पू
त्तम क्रिया *(Perfect Action)* है। कर्तृत्व के अभिमान
रहित होकर जो व्यक्ति काम करता है, उसके अन्दर किसी
तरह की कमजोरी नहीं आ सकती। कर्म ही उसका खाद्य ब
जाता है। इच्छा के साथ काम करना अल्पता है। जहाँ प
रिपूर्ण निष्कामता है, वहाँ व्यक्ति की विजय निश्चित है
ह शहंशाहों का भी शहंशाह बन जाता है। शक्ति या र
हस्य राम बादशाह ने हमें बताया है।

स्वामी रामतीर्थ-निवा
टिहरी ४-१०-७२

१७-

लोक-सेवा : संन्यास-जीवन का ऐश्वर्य

अमर आत्मस्वरूप दिव्य अविनाशी आत्माओ ! भारत-वर्ष एक पुण्य भूमि है। उसमें भी पुनीत उत्तराखण्ड और उसमें भी पुनीत उत्तरकाशी में आप पवित्र आत्माओं के सत्सङ्ग और आपके बीच बैठने तथा आपके चरणों की अल्प सेवा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। मैं अपने को बहुत धन्य अनुभव कर रहा हूँ। यहाँ के कार्यक्रम का शुभारम्भ साधुओं के दर्शन और सेवा द्वारा हो रहा है, यह मेरे लिए एक आशीर्वाद है।

सच्चिदानन्द-रूपी भगवान् जो नित्य, अखण्ड, अनन्त, अनादि हैं, जिनकी खोज में आप अपना भौतिक जीवन त्याग किये हैं, उनके अनुग्रह से आपकी साधना सफल हो जिससे कि इसी जन्म में आप जीवन्मुक्त पुरुष बनें, सिद्ध योगेश्वर बनें और उसके माध्यम से आप लोक-कल्याण के स्रोत बनें। लोक-संग्रह के लिए कार्य करते हुए आपके द्वारा अनन्त जीवात्माओं की सेवा हो। जिस

दूसरों को प्राप्त करने में योग-दान कर सकें।

सन्तों की चरण-रज—

प्रभु की कृपा से इस सेवक को २५ वर्ष तक उत्तर के एक महापुरुष की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हु यह सब सन्तों की असीम कृपा के फलस्वरूप ही हुआ; क मुझमें कोई ऐसी योग्यता नहीं थी जो इस प्रकार के पुरुष की सेवा का अवसर एक अधिकार के रूप में होता। गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी महाराज बड़े द थे। उनकी कृपा समस्त जीव-मात्र पर थी। एक प्रका मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की तरह उनका सिद्धान्त कि जो भी चरणों में आ जाय उसे प्रेम से अङ्गीकार कर ले उनके इस स्वभाव के परिणाम-स्वरूप ही वहाँ पहुँचते ही उनके निकट निवास का लाभ और साथ-साथ उनकी से करने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ। जब वे सशरीर थे तो २५ व तक उनकी सेवा में संलग्न रहा। अपना स्थूल शरीर त्य कर वे चले गये; परन्तु हमारा यह अटल विश्वास है कि आ भी वे सूक्ष्म शरीर से उसी रूप में हमारे बीच विद्यमान हैं हमारे द्वारा उनकी सेवा उसी तरह हो रही है जिस तर उनकी महासमाधि से पहले थी। शिवानन्द जी महान् वेदा न्ती थे। शङ्कराचार्य के सरस्वती नामा सम्प्रदाय के संन्यासी थे। स्वामी विष्णुदेवानन्द जी द्वारा उनका संन्यास-संस्कार हुआ था। गुरु से अद्वैत की शिक्षा लेकर वे ऋषिकेश में साधु-मण्डली के बीच रहे। सभी संन्यासी उनको महाज्ञानी मानते थे।

बोरी वाले नारायण स्वामी जी के साथ गुरु महाराज की मित्रता थी। ऐसे ही तपोवन जी के साथ उनकी मित्रता

रही। वे एक ही समय स्वर्गाश्रम में रहते थे। गुरु महाराज मूर्त्ति की तरह एक ही स्थान पर रहे। नारायण दास परमहंस इधर-उधर घूमते रहते थे। भगवन्नाम सङ्कीर्त्तन में उनका बहुत शौक रहा। महा विरक्त होने के नाते शिवानन्द जी उन्हें बहुत मानते थे। राजगिरि नाम के एक दूसरे पुराने महात्मा थे अनिकेत—अपने पास कुछ भी नहीं रखते थे। मधुकरी द्वारा भोजन करते थे। चलते-फिरते खाते थे। कभी पेड़ के पास, कभी गङ्गा के किनारे रहते। आत्म-बल, सहनशीलता और तितिक्षा-सम्पन्न ऐसे महापुरुषों द्वारा बताया हुआ जो जीवन है, वह आदर्श प्रत्येक संन्यासी के जीवन में रहे जिससे यह उत्तराखण्ड सचमुच जाग्रत आध्यात्मिक क्षेत्र बने।

पश्चिम की भौतिकता और भारतीय दर्शन की दिव्यता—

विदेशों में शिक्षा का प्रसार बहुत अधिक हुआ है। विज्ञान में उनकी बहुत प्रगति हो चुकी है। इससे उनके रहन-सहन के ढङ्ग में भी पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। शारीरिक सुविधाएँ उन्हें बहुत प्राप्त हो चुकी हैं। निर्धन से निर्धन व्यक्ति के लिए भी जीवन की मौलिक आवश्यकताएँ सहज रूप से प्राप्त हैं जो हमारे देश के निर्धन व्यक्ति को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होतीं। अपरा विद्या में चरम प्रगति के कारण भौतिक पदार्थों के विषय में वे बहुत कुछ जानते हैं, परन्तु इस भाँति विज्ञान के आगे बढ़ने और उससे काम लेने से जो सभ्यता उन्होंने बनायी है, उससे क्या उनके समाज का अभ्युदय हो गया है? क्या आनन्द के पुष्प खिल गये हैं? क्या उनमें दैवी सम्पत्ति का विकास हुआ है? इनमें से एक प्रश्न का भी उत्तर वे 'हाँ' में नहीं दे सकते हैं।

चेतना की विकास-यात्रा के तीन पड़ाव हैं : पशुता, मानवता और दिव्यता। जीवन को मानवता तक पहुँचाने की बात तो पाश्चात्य विद्वानों ने मान ली है। वे कहते हैं कि मानव एक विवेकशील अस्तित्व है *(Man is a rational being)* ; परन्तु हमारा कहना तो है कि मनुष्य विकसित होता हुआ परमात्म तत्त्व है *(Man is God in making)* । मानवता तो आरोपित घटना *(Superimposed factor)* है। उसका निजी स्वरूप दिव्य है। दिव्यता उसमें अन्तर्निहित है। जिस भाँति वृक्ष का पूरा स्वरूप बीज में निहित है उसी भाँति हर मानव के अन्दर दिव्यता मौजूद है। यह जो सुप्त और गुप्त दिव्यता है इसको प्रकट करना हमारा काम है। जिसमें दिव्य स्वरूप को जागृत करने की प्रक्रिया नहीं है वह तो चलता-फिरता मुर्दा है। जीवन का मुख्य उद्देश्य है—दिव्यता का प्रस्फुटन *(To unfold the Divinity.)* । दिव्यता के अनावरण में जो रत हैं, उनके जीवन में ही यह प्रकाश प्रकट होता है।

पाश्चात्य जगत् में सब तरह की जगमगाहट है। मानव के वाहर का सारा परिवेश उन्होंने बदल दिया है, परन्तु विज्ञान के द्वारा जो साधन उनके हाथ में आये हैं उससे उनके स्वभाव में लोभ, स्वार्थ तथा संग्रह की वृत्ति का विकास हुआ है। इससे मानवता नष्ट हो गयी है। जहाँ के लोग लोभी, विषयासक्त और स्वार्थी हों, वहाँ पर शान्ति नहीं हो सकती। वहाँ पर सङ्घर्ष और क्रोध स्वाभाविक है। व्यक्तियों और राष्ट्रों के स्वार्थों ने वहाँ दो विश्व-युद्धों को जन्म दिया है। मानव दानव बनकर पीड़ा और विनाश को फैला रहा है। उनके अन्दर आध्यात्मिक अन्धकार छा गया है। इस अन्ध-
[illegible] वाले के कीडों की तरह फँस गये हैं। उनका

सारा जीवन सुखोन्मुख है *(The whole life is pleasure orientoted.)* उनके सामने विषय-भोग के अतिरिक्त कोई कल्पना नहीं है विनाश के अन्तिम मञ्जिल पर वे पहुँच गये हैं। सङ्घर्ष, हिंसा और युद्ध वहाँ अब भी चालू है। यह सब भौतिकवाद का फल है; अपरा विद्या तक ही अपने को सीमित रखने का परिणाम है। इस अन्धकार में हमारे पाश्चात्य जगत् के भ्रातृवृन्द हैं।

साधु की प्रतिज्ञा

जो साधु है, उसने प्रतिज्ञा ली है कि मैं सारे प्राणियों में बन्धुत्व-भाव रखूंगा। मुझसे किसी को भय नहीं हो सकता। मैं सबसे प्रेम करने वाला हूँ। मुझसे सबका हित होगा। विश्वप्रेम मेरे जीवन का मूलमन्त्र है। अन्धकार में जो लोग फँसे हुए हैं उनके प्रति मेरा एक दायित्व है, एक कर्त्तव्य है और यह कर्त्तव्य मेरा सौभाग्य है। हमें कर्त्तव्य-कर्म को कभी बोझ नहीं समझना चाहिए। कर्त्तव्य करने से हमारा अभ्युदय होता है।

पाश्चात्य जगत् में भौतिकवाद से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है वह अब हमारे देश में पहुँच गयी है। उनकी विचार-धारा प्रचण्ड रूप में हमारे देश में फैल रही है। यदि समय रहते हुए कुछ किया नहीं गया तो जो कुछ भारतीयता है, जो हमारा वेदान्त, योग, ज्ञान और संस्कृति है, वह सब बाढ़ में बह जायगी। उसके बाद न साधु के लिए कोई स्थान रह जायगा और न योगी और गृहस्थ के लिए ही। यह एक बनता हुआ इतिहास है। अतः इसमें से हमें कुछ न कुछ समय के चिह्न देखकर उससे कुछ अर्थ पा लेना है। आखिर यह

भौतिक जगत् है। जो स्थूल है, उसी के लिए यहाँ आ
ण है, उसी की विजय है। यदि हम चुप बैठे रहे तो पश्
ताप करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण तो एक मिनट में ही महाभा
को समाप्त कर सकते थे, परन्तु उन्होंने सेना रखकर यह क
किया। इस स्थूल अवस्था के विषय में हमें कुछ करना है
भौतिकवादियों ने प्रचार द्वारा, प्रत्यक्ष कार्य द्वारा यह स
किया है तो हमें भी प्रचार और कार्य द्वारा अपने को ट
रताना है। यह सब करने का समय अब बहुत कम रह गय
है। समय तेजी से दौड़ रहा है। हम कुछ न कर सके त
भारतीय संस्कृति आमूल नष्ट हो जायगी, भारतवर्ष समाप
हो जायगा और यदि भारत ही समाप्त हो गया तो संसार ह
समाप्त हो जायगा। जगत् के लिए यदि कोई आशा है तो वह
भारतीयता और भारतवर्ष है।

विश्व-भ्रमण के समय मैंने यही देखा है कि वहाँ के नवयुवक
हमारी ओर देख रहे हैं। वहाँ के नौजवान निराश होकर,
दुःखी होकर, भयभीत होकर यहाँ आ रहे हैं। यदि सम्भव
हो तो हमें बिगड़ती परिस्थिति को बचाने का प्रयत्न करना
चाहिए। भारतवर्ष में हमारा जन्म हुआ। यहीं की संस्कृति
हमारा जन्मसिद्ध ऐश्वर्य बनी। इस संस्कृति के जो महापुरुष
हुए उनके ज्ञान को पाकर हम निवृत्ति के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए।
भारतीय होने के नाते आद्य शङ्कराचार्य के अद्वैत वेदान्त का
ऐश्वर्य हमें प्राप्त हुआ। हमारे शरीर के कण-कण में, हमारे
रक्त की धारा में वह कूट-कूट कर भरा हुआ है। भारत के
जीवन में उन्होंने ही चार आश्रमों की योजना बना कर रखी
है। हमारे अन्दर जो कुछ शक्ति है, वह भारत की शक्ति है।
चाहे वेदान्त, चाहे योग और चाहे साधना के रूप में हम

भौतिक जगत् है। जो स्थूल है, उसी के लिए यहाँ आ
ण है, उसी की विजय है। यदि हम चुप बैठे रहे तो पश्च
ताप करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण तो एक मिनट में ही महाभार
को समाप्त कर सकते थे, परन्तु उन्होंने सेना रखकर यह का
किया। इस स्थूल अवस्था के विषय में हमें कुछ करना है
भौतिकवादियों ने प्रचार द्वारा, प्रत्यक्ष कार्य द्वारा यह स
किया है तो हमें भी प्रचार और कार्य द्वारा अपने को द
बनाना है। यह सब करने का समय अब बहुत कम रह गय
है। समय तेजी से दौड़ रहा है। हम कुछ न कर सके त
भारतीय संस्कृति आमूल नष्ट हो जायगी, भारतवर्ष समाप्त
हो जायगा और यदि भारत ही समाप्त हो गया तो संसार ही
समाप्त हो जायगा। जगत् के लिए यदि कोई आशा है तो वह
भारतीयता और भारतवर्ष है।

विश्व-भ्रमण के समय मैंने यही देखा है कि वहाँ के नवयुवक
हमारी ओर देख रहे हैं। वहाँ के नौजवान निराश होकर,
दुःखी होकर, भयभीत होकर यहाँ आ रहे हैं। यदि सम्भव
हो तो हमें बिगड़ती परिस्थिति को बचाने का प्रयत्न करना
चाहिए। भारतवर्ष में हमारा जन्म हुआ। यहीं की संस्कृति
हमारा जन्मसिद्ध ऐश्वर्य बनी। इस संस्कृति के जो महापुरुष
हुए उनके ज्ञान को पाकर हम निवृत्ति के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए।
भारतीय होने के नाते आद्य शङ्कराचार्य के अद्वैत वेदान्त का
ऐश्वर्य हमें प्राप्त हुआ। हमारे शरीर के कण-कण में, हमारे
रक्त की धारा में वह कूट-कूट कर भरा हुआ है। भारत के
जीवन में उन्होंने ही चार आश्रमों की योजना बना कर रखी
है। हमारे अन्दर जो कुछ शक्ति है, वह भारत की शक्ति है।
चाहे वेदान्त, चाहे योग और चाहे साधना के रूप में हम

भारतीयता के मूर्त्तमन्त प्रतीक हैं। उसका आध्यात्मिक अंश हमारे अन्दर जागृत है। हम उत्तमोत्तम संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। अत: अन्धकार से घिरा हुआ असूर्या नाम का जो पश्चिमी लोक है, उसे प्रकाशित करना हमारा परम पुनीत कर्त्तव्य है।

'भा' अर्थात् प्रकाश—

भारतवर्ष शब्द का एक बहुत ही उत्तम अर्थ है। 'भा' का अर्थ होता है प्रकाश। जिस जाति ने इस प्रकाश को पाने में ही अपने जीवन की साधना को लगा दिया है, जिनको इस ज्ञान से प्रेम है, वे सब भारतीय हैं। ऐसी प्रजा से बना यह भारत राष्ट्र है। अज्ञान के परिहार का एकमात्र साधन ज्ञान है। जिसके सौभाग्य में यह ज्ञान है, यह प्रकाश है, उसने इस प्रकाश के द्वारा दूसरों के जीवन के अज्ञान को दूर नहीं किया तो उसके जीवन का कर्त्तव्य अधूरा रह जायगा। प्राचीन काल से संन्यासी वर्ग की यही चेष्टा रही है कि पर्यटन करके, परिभ्रमण करके इस ज्ञान को व्यापक रूप से फैलायें। संन्यासी के लिए विधान था कि वह तीन दिन से अधिक एक स्थान पर न ठहरे। 'चरैवेति चरैवेति।' एक ही स्थान में ममता न हो जाय इसलिए तीन दिन तक ठहरना और फिर चले जाना। परिव्राजकों की इस परम्परा के कारण हमारी जनता में ज्ञान वर्तमान है। ज्ञान-प्रसार का यह कार्य भारत में चुपचाप शान्तिपूर्वक चलता रहा। कई प्रकार के आक्रमण भारत पर हुए, किन्तु यहाँ के साधु अपना कर्त्तव्य करते रहे। उत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान को वे झोपड़ी-झोपड़ी में बाँटते रहे, देहातों में घूमते रहे। यदि भारत प्रकाश का स्रोत है तो हम भारतीय हैं और इस नाते हमें ज्ञान तथा प्रकाश की धारा बहानी

ा के आवाहन पर तुरन्त पहुँचें—

हमारे ऋषिगण सबकी भलाई के लिए कार्य करते रहे हैं; सब की भलाई के लिए प्रार्थना करते रहे हैं। **'लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु'**—यह भारतीय मनीषियों की चिर आकांक्षा रही है। हमें भी 'सर्व भूत हित' के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। इस प्रार्थना के अनुसार कार्य करना अपने जीवन का सौभाग्य समझना चाहिए। परम अद्वैती शङ्कराचार्य का कार्यक्षेत्र के प्रति निर्माणात्मक व रचनात्मक दृष्टिकोण रहा है। हमारी जो स्थिति है, उसके अनुसार हमें लोकहित के कार्य को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए एक साधना का स्वरूप ही समझना चाहिए। सैद्धान्तिक वेदान्त लोगों को बताने की आवश्यकता नहीं है। मैं व्यावहारिक वेदान्त चाहता हूँ। सेवा के लिए कुछ न कुछ कार्य होना चाहिए। स्व अपने लिए हम सक्रिय हैं। कुटिया में जब चाय समाप्त हो जाती है तो हम उसे खरीदने के लिए एक मील दूर चल पड़ते हैं। हमारे अन्दर जो आत्मा है, वही सब के अन्दर है। **'समं सर्वेषु भूतेषु यः पश्यति स पश्यति'**—तब लोकहितकारी कार्यों में लगने में हमें झिझक क्यों होनी चाहिए? जहाँ-जहाँ पर साधुत्व का आवाहन हो रहा हो, उसकी आवाज सुननी चाहिए और तुरन्त वहाँ पहुँचना चाहिए। साधु का हृदय तो मक्खन के समान कोमल होता है। मक्खन तो अपने ही ताप से द्रवित होता है, लेकिन साधु दूसरे के ताप से भी द्रवित होता है। साधुवृन्द की इसी तरह की उदारता होनी चाहिए। जहाँ पर भी दुःख देखें उसे शमन करने के लिए तुरन्त कुछ कर बैठें।

जो वास्तविक प्रभुप्रेमी होते हैं उनकी इच्छाएँ समाप्त हो गयी होती हैं। इच्छारहित भक्त के मन में एक ही इच्छा होती है कि जिस प्रभु की मैं सन्तान हूँ, उसकी सन्तान को दुःख न हो। **'मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्'**। प्रह्लाद के सामने भगवान् नरसिंह रूप में प्रकट होते हैं। क्षमा माँगते हैं कि आने में विलम्ब हुआ। प्रह्लाद से वर माँगने को कहते हैं; पर वह उत्तर देता है कि भगवन्! आप यह क्या कह रहे हैं? क्या मुझे फिर से इच्छाओं के जाल में फँसाना चाहते हैं? भगवान् जब बहुत आग्रह करते हैं तो वह कहता है: **'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्त्तिनाशनम्**।' मैं आर्त्त लोगों के दुःखहरण की एकमात्र कामना करता हूँ।

ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी—

मानव-जन्म भगवत्साक्षात्कार के लिए मिला हुआ अमूल्य अवसर है। जीवन में हम जो कुछ करते हैं, वह साधना का ही एक अंश है। ईश्वर की अर्चना में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों सम्मिलित हैं। हमें, 'ईश्वरः सर्वभूतेषु' का ज्ञान है। इसके साथ ही ईश्वर के प्रति हमारा प्रेम है। इसके आधार पर अनेकों सत्कर्म करते हुए ज्ञानयुक्त भक्ति को प्रकट करना है। सत्कर्म, ईश्वर-भक्ति और सम्यक् ज्ञान—ये जीवन की त्रिवेणी हैं। इस प्रकार किया हुआ कर्म प्रभु के चरणों में हम समर्पित करें तो हमारा पूरा का पूरा जीवन आध्यात्मिक हो जायगा। भगवान् ने स्पष्ट कहा है कि भक्तिभाव से अर्पित पत्ते को भी मैं स्वीकार कर लेता हूँ। तो क्या इस प्रकार ज्ञान और भक्ति से समर्पित कर्म उन्हें स्वीकार नहीं होगा?

हमारी संस्कृति में बताया गया है कि यह शरीर परोपकार के लिए है। **'परोपकारार्थमिदं शरीरं**।' कर्म तो हमें करना

सूक्ष्म अहंता को मिटायें—

परमात्म तत्त्व के और हमारे बीच में जो सबसे बड़ी दीवार है, वह हमारा खोटा व्यक्तित्व है। अनेक उपाधियों के साथ जुड़ा हुआ हमारा व्यक्तित्व वास्तविक नहीं है। इस भूठे व्यक्तित्व को हमें मिटा देना है। वह बड़ा छली और कपटी है। इस व्यक्तित्व को हम केवल मात्र प्रकट रूप से सामना करके मार सकते हैं। मैं संन्यासी हूँ, डाक्टर हूँ, कलक्टर हूँ—इन सब उपाधियों के द्वारा हमारा व्यक्तित्व मोटा बनता है। आत्म-निरोध के द्वारा, समाधि के द्वारा इस भूठ का नाश करना है। इसके लिए पहले तमोगुण का नाश करना होगा। नम्र तथा निरहङ्कारी बनना होगा। निस्स्वार्थ होकर सेवा करनी होगी। उसके बाद जो सूक्ष्म अहंता है, उसको वेदान्त-विचार के द्वारा, श्रवण-ध्यान के द्वारा निर्मूल करना होगा। बाह्य उपाधियों को और सूक्ष्म अहंता को मिटाने का काम एक साथ होगा तो आध्यात्मिक प्रगति तीव्र गति से होगी। कर्मयोग को तो कभी नहीं छोड़ना चाहिए। शैतान के आक्रमणों से बचने के लिए वह मजबूत ढाल है। सर्वोदय के काम के साथ राजनीति का रञ्चमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो मानवीय कार्य है। उसका आधार एकता और प्रेम है। सर्वतोमुखी प्रकाश का

आगमन प्रजा के जीवन में हो, यही सर्वोदय है।

आध्यात्मिक जीवन यदि बचा हुआ है तो उत्तराखण्ड में ही है। चीन के आक्रमण के बाद से इस तपोभूमि का वातावरण समाप्त हो रहा है। अतः यह भी आवश्यक हो गया है कि आप अपनी तपस्या, प्रार्थना, सङ्कल्प-शक्ति और जीवन द्वारा यहाँ की आध्यात्मिकता को बनाये रखने का प्रयत्न करें। ईसा ने अपने शिष्यों से कहा था कि 'तुम धरती के नमक हो।' यदि नमक अपना नमकीनपन छोड़ दे तो कौन उसे पूछेगा? इसी भाँति उत्तराखण्ड की आध्यात्मिकता पर प्रहार हो जाये तो विश्व की आध्यात्मिकता का क्या होगा?

ऋषिकेश-हरिद्वार में शराब पीने का निषेध है। उससे भी पवित्र क्षेत्र उत्तरकाशी है; परन्तु यहाँ की प्रजा पिछड़ी हुई है। लोग कुष्ठरोग, टी०वी० आदि अनेकों रोगों से पीड़ित हैं। लोगों का चरित्र ठीक नहीं है। उनमें जागृति लाने के लिए कुछ करना चाहिए। मद्य-निषेध के आन्दोलन में मैंने भी भाग लिया। साधु परहित के लिए काम करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से मैं इस काम में सम्मिलित हुआ। उसी दृष्टि से कुछ लोगों को बताया भी। अब शासन की ओर से तो नशाबन्दी है। अब

सूक्ष्म अहंता को मिटायें—

परमात्म तत्त्व के और हमारे बीच में जो सबसे बड़ी दीवार है, वह हमारा खोटा व्यक्तित्व है। अनेक उपाधियों के साथ जुड़ा हुआ हमारा व्यक्तित्व वास्तविक नहीं है। इस झूठे व्यक्तित्व को हमें मिटा देना है। वह बड़ा छली और कपटी है। इस व्यक्तित्व को हम केवल मात्र प्रकट रूप से सामना करके मार सकते हैं। मैं संन्यासी हूँ, डाक्टर हूँ, कलक्टर हूँ—इन सब उपाधियों के द्वारा हमारा व्यक्तित्व मोटा बनता है। आत्म-निरोध के द्वारा, समाधि के द्वारा इस झूठ का नाश करना है। इसके लिए पहले तमोगुण का नाश करना होगा। नम्र तथा निरहङ्कारी बनना होगा। निस्स्वार्थ होकर सेवा करनी होगी। उसके बाद जो सूक्ष्म अहंता है, उसको वेदान्त-विचार के द्वारा, श्रवण-ध्यान के द्वारा निर्मूल करना होगा। बाह्य उपाधियों को और सूक्ष्म अहंता को मिटाने का काम एक साथ होगा तो आध्यात्मिक प्रगति तीव्र गति से होगी। कर्मयोग को तो कभी नहीं छोड़ना चाहिए। शैतान के आक्रमणों से बचने के लिए वह मजबूत ढाल है। सर्वोदय के काम के साथ राजनीति का रञ्चमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो मानवीय कार्य है उसका आधार एकता और प्रेम है। सर्वतोमुखी प्रकाश

आगमन प्रजा के जीवन में हो, यही सर्वोदय है।

आध्यात्मिक जीवन यदि बचा हुआ है तो उत्तराखण्ड में ही है। चीन के आक्रमण के बाद से इस तपोभूमि का वातावरण समाप्त हो रहा है। अतः यह भी आवश्यक हो गया है कि आप अपनी तपस्या, प्रार्थना, सङ्कल्प-शक्ति और जीवन द्वारा यहाँ की आध्यात्मिकता को बनाये रखने का प्रयत्न करें। ईसा ने अपने शिष्यों से कहा था कि 'तुम धरती के नमक हो।' यदि नमक अपना नमकीनपन छोड़ दे तो कौन उसे पूछेगा? इसी भाँति उत्तराखण्ड की आध्यात्मिकता पर प्रहार हो जाये तो विश्व की आध्यात्मिकता का क्या होगा?

ऋषिकेश-हरिद्वार में शराब पीने का निषेध है। उससे भी पवित्र क्षेत्र उत्तरकाशी है; परन्तु यहाँ की प्रजा पिछड़ी हुई है। लोग कुष्ठरोग, टी०बी० आदि अनेकों रोगों से पीड़ित हैं। लोगों का चरित्र ठीक नहीं है। उनमें जागृति लाने के लिए कुछ करना चाहिए। मद्य-निषेध के आन्दोलन में मैंने भी भाग लिया। साधु परहित के लिए काम करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से मैं इस काम में सम्मिलित हुआ। उसी दृष्टि से कुछ लोगों को बताया भी। अब शासन की ओर से तो नशाबन्दी है। अब आपका काम है कि अपने आसपास के गृहस्थ नागरिकों को बुलाकर उन्हें समझाकर इस बात की प्रेरणा दें कि वे व्यसन छोड़ें। आप लोगों को तो निमित्त बनना है—'**निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्**।' लोगों का नैतिक शिक्षण होना चाहिए। यहाँ ऐसे सुन्दर स्थान में मांस व शराब नहीं होने चाहिए। इस काम के लिए आप लोग कभी-कभी समय दीजिए। गाँव में भ्रमण की योजना बनाइए। साधु को देखकर लोगों में श्रद्धा पैदा होती है।

आदर्श विवाह

आनन्दमय आत्मस्वरूप !

यह मातृतुल्य हमारी पुण्य भूमि भारतवर्ष और उसका यह पवित्रतम भाग उत्तराखण्ड है। यहीं हरिद्वार से पूर्व पुनीत जाह्नवी के दक्षिण तट पर एक महान् सन्त तथा महापुरुष का निवास-स्थान है। उनका बसाया हुआ यह शिवानन्दाश्रम उनका कार्यक्षेत्र, उनके जन-कल्याण तथा लोकसंग्रह का कार्यक्षेत्र था। गुरु महाराज श्री स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में अनेक पवित्र वस्तुओं का संग्रह है। श्री विश्वनाथ जी का मन्दिर, दिव्य-नाम मन्दिर, स्वामी शिवानन्द जी की समाधि आदि अनेक दिव्य स्थल हैं।

इस उत्तराखण्ड में माँ गङ्गा के पावन तट पर आज आप सभी ने एक पवित्र संस्कार देखा जिसमें दो अजर-अमर, अविनाशी आत्माओं का एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक मिलन हो चुका है। इन जीवात्माओं का इस पार्थिव तथा भौतिक जगत् में एक विशेष स्थान है।

महाराज ! खा लीजिए न।' परन्तु मैं देखता रहा कि साधु महाराज मुँह नहीं खोल सके। उन्होंने वह केला काँपते हाथों में लेकर थाली में रख दिया। काँपते हाथों से कुछ सेव काटे और प्रसादी के रूप में हम सब को दिया। मैं सोचने लगा, सत्ता और सम्पत्ति के बड़े-बड़े ठेकेदार जिस स्वामी के चरण छूते हैं, वह एक साधारण साधु को परमात्मा की तरह अपने हाथों भोग लगा रहा है, पाँव पड़ रहा है।' लेकिन जिसका जीवन हरिमय हो जाता है उसके लिए कौन क्षुद्र और कौन महान् ! साधारण-असाधारण का भेद ही उसके लिए मिट जाता है। ऐसी भावदशा में ही अनुभूति काव्य बनकर फूट पड़ती है :

'सिया राममय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'

तस्मै श्रीगुरवे नमः : १३ अक्तूबर की शाम को ८ बजे हम अलमोड़ा से नैनीताल के लिए रवाना हुए। रास्ते में गरम पानी छोटा-सा स्टेशन है। खाने-पीने की खूब चहल-पहल यहाँ पर रहती है। उसी के पास नदी के किनारे दो पहाड़ियों के बीच कैंची नाम का स्थान है। वहीं पर नीम करौली बाबा का आश्रम व हनूमान् जी का सुन्दर मन्दिर है। नीम करौली बाबा सिद्ध पुरुष हैं, ऐसा माना जाता है। बड़े से बड़े सत्ता और सम्पत्तिधारी उनके भक्त हैं। कैंची में हमारी गाड़ी पहुँची तो स्वामी जी ने बाबा के दर्शन की इच्छा प्रकट की। मुकुल आश्रम में जाकर पता कर आया कि बाबा इस समय वहीं हैं और दर्शन की स्वीकृति मिल गयी है। हम सब बाबा की कुटिया की तरफ चल दिये। मैं सोचता रहा कि दो महात्माओं का मिलन हो रहा है। दोनों अकड़ कर बातें करेंगे। कुछ

औपचारिकता और ज्ञान-चर्चा होगी ।

बाबा के छोटे-से कमरे में हम दाखिल हुए । वे एक तख्त पर कम्बल ओढ़ कर बैठे हुए थे । कमरे में दाखिल होते ही स्वामी जी बाबा के चरणों में लेट जैसे गये । गद्गद हो गये । दूसरी तरफ बाबा के चेहरे पर मैंने देखा कि वहाँ कोई भी प्रतिक्रिया नहीं है । जैसे सब सहज होता जा रहा है । हम सब ने भी बाबा के चरणों को छुआ और जमीन पर बिछी चटाइयों के ऊपर बैठ गये । फिर संक्षिप्त बातचीत हुई । स्वामी जी ने बजरङ्ग बली का एक कीर्त्तन करवाया । बाबा के जो भी भक्त उस समय कमरे में आते सबको वे स्वामी जी के चरण छूने का आदेश देते और कहते, 'बहुत अच्छे सन्त हैं ।' इस पर स्वामी जी ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की वह किसी भी सर्वोदय कार्यकर्त्ता को दृष्टि देने के लिए काफी है । उन्होंने अपनी गोरी व कोमल उंगलियों के पोरों से अपनी हथेलियों को मलते हुए कहा, "बाबा ! सन्त तो गुरु महाराज शिवानन्द जी थे । चन्दन के साथ रहते हुए मेरे हाथों में भी कुछ खुशबू लग गयी है ।" गुरु के प्रति यह अगाध श्रद्धा और अपने को शून्य बनाने की यह साधना ! दूसरी तरफ हम लोग हैं जो गाँधी-विनोबा को पीछे धकेलकर अपना झण्डा गाड़ना चाहते हैं; भले ही आन्तरिक रूप से और साधना के जगत् में दरिद्र हों । सन्त स्वामी चिदानन्द जी और सिद्ध नीम करौली बाबा के सङ्गम में स्नान करने का अवसर मिला, इससे मैं भी धन्य हो गया ।

इससे पहले कि मैं आपको आगे के संस्मरण सुनाऊँ, नीम करौली बाबा के कमरे में घटी घटना का जिक्र कर दूँ । बाबा को अर्पित करने के लिए हम पाँच सेब ले गये थे । उनके कमरे में एक खाली टोकरी थी । उस टोकरी में सेब रखकर हमने

बाबा के सामने रख दिया। बाबा ने उसी टोकरी में से सेव हमें बाँटने शुरू कर दिये। हम छः लोग थे। हर एक को तीन-तीन सेव मिले। कुल अठारह सेव हुए। बाकी तेरह सेव कहाँ से आये, हमें पता नहीं। इतना पता है कि टोकरी खाली थी और हमने केवल पाँच सेव उसमें रखे थे। बाद में स्वामी जी ने बाबा के बारे में कुछ जानकारी हमें दी। कहा जाता है कि नीम करौली बाबा को हनूमान् जी की सिद्धि है। एक बार वे बगैर टिकट के रेल से यात्रा कर रहे थे। टी० टी० ने उन्हें एक स्टेशन पर धक्का देकर बाहर निकाल दिया। गार्ड ने सीटी बजायी। ड्राइवर ने इञ्जन चालू किया, किन्तु गाड़ी इञ्च भर भी आगे नहीं खिसक सकी। बाद में सब यात्री और रेल-कर्मचारी आये, बाबा को मनाया। बाबा ने कहा, "अच्छा चलते हैं।" डिब्बे में बैठे और गाड़ी चल दी। तर्क को इस तरह के चमत्कार स्वीकार नहीं; परन्तु असंख्य घटनाएँ इस बात को बराबर सिद्ध करने में लगी हैं कि सिद्ध पुरुषों की उपस्थिति में चमत्कार सहज रूप से घटित होते रहते हैं।

परमात्मा की तरफ जाने वाला वह कीड़ा : नैनीताल से १५ ता० को कोटद्वार पहुँचना था। रामपुर में टूरिस्ट कार्यालय से मुकुल नकशा ले आया था, लेकिन मुरादाबाद में हमारी मोटर ने गलत रास्ता पकड़ लिया। १००किलो मीटर ज्यादा दूरी तय की। मुझे बराबर भय बना रहा कि स्वामी जी हमारी असावधानी पर नाराज होंगे, खीजेंगे, परन्तु वे अपने चेहरे की सौम्यता भला क्यों छोड़ने लगे? खैर, जैसे-तैसे ६ बजे रात्रि को हम कोटद्वार पहुँचे। रामलीला के मञ्च से ही स्वामी जी का प्रवचन होना था। कुछ मिनट विश्राम करने के बाद वे मञ्च पर पहुँच गये। मैं भी उनके

पास बैठ गया। स्वामी जी तन्मय होकर भारतीय संस्कृति व दिव्य जीवन का सन्देश सुना रहे थे। मैंने देखा कि टिड्डी की तरह का एक कीड़ा उनकी तरफ बढ़ा चला जा रहा है। वह स्वामी जी के शरीर तक न पहुँच सके इसलिए नाखून की ठोकर से उसे दूर फेंक देने के लिए मेरा हाथ आगे बढ़ा ही था कि स्वामी जी का गौर वर्ण हाथ मुझे मना करते हुए दिखायी दिया। बड़े प्यार से उन्होंने उस क्षुद्र कीड़े को अपनी हथेली के नीचे बिठा दिया, ठीक वैसे ही जैसे एक माँ अपने नादान छोटे शिशु को अपने आञ्चल में छिपा लेती है। धन्य हो गया होगा वह कीड़ा! छोटा कीड़ा ही क्यों न हो, यदि उसकी आँखें प्रभु की ओर उठी हों तो वह महान् है। मुझे आश्चर्य यह देखकर हुआ कि स्वामी जी भावविभोर होकर प्रवचन भी करते जा रहे हैं और साथ ही कीड़े को कष्ट पहुँचाने के लिए मैं क्या खुरापात कर रहा हूँ इस ओर भी उनका पूरा ध्यान है। जीव मात्र के प्रति जिनका तादात्म्य बन गया हो, उन्हें दूसरे का थोड़ा कष्ट भी सहन नहीं हो सकता है। तभी तो डण्डा भैंस की पीठ पर पड़ता है और घाव एकनाथ की पीठ पर उभड़ता है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय : आज मैं जहाँ भी जाता हूँ, जिससे भी बात करता हूँ दुनिया में नया सवेरा लाने की, नये फूल खिलाने की। वही कहता है, "भाई, क्या पागलपन की बातें करते हो? आज सब स्वार्थी हो गये हैं। तुम्हारी कोई नहीं सुनने वाला। सब बदमाश हैं, भ्रष्ट हैं। कुछ नहीं हो सकता," आदि आदि। स्वामी जी से भी लोग इसी तरह का मन्तव्य प्रकट करते। कोटद्वार में 'कर्मभूमि' के सम्पादक श्री भैरवदत्त धूलिया ने भी यही विचार प्रकट किया और फिर

स्वामी जी का प्रार्थना-प्रवचन इसी पर हुआ। एक चीनी कहावत वे हर जगह सुनाते गये, "इट् इज़ बेटर टु लाइट् ए कैन्डिल दैन टु कर्स दि डार्कनेस अराउण्ड यू।" अन्धकार-अन्धकार चिल्लाने से वह मिट तो नहीं जायगा। बेहतर है कि हम एक दिया बन जायें, एक छोटी-सी प्रभात-किरण बन जायें तो अन्धकार मिट सकता है। अन्धकार के तथ्य से हम प्रकाश के सत्य तक पहुँच सकते हैं। स्वामी जी जवाब देते, "यदि अन्धकार न होता तो मुझ जैसे आदमी के लिए इस तरह घूमने की क्या आवश्यकता थी?" सच ही है, प्रभु की शरण में जो पहुँच गया है उसके लिए कुछ करने को रह नहीं जाता। यदि वह कुछ करता है तो परमात्मा की करुणा ही उससे कर्म-रूप में प्रकट होती है।

एक सप्ताह इस जङ्गम तीर्थ में गोता लगाने का मुझे अवसर मिला, यह परमात्मा की कृपा ही रही होगी। स्वामी जी के सहज, सरल, विनम्र, भगवद् समर्पित जीवन का दर्शन कर मैं भी धन्य हुआ। धर्म और अध्यात्म के प्रति प्यास तीव्र हुई।

महाप्रश्न : लेकिन अभी भी एक प्रश्न मेरे मन में बना हुआ है। वही प्रश्न मैंने स्वामी जी के सामने भी रखा था, "क्या बात है कि जो भी धार्मिक-आध्यात्मिक विभूति हैं उनके चारों ओर तख्त और तिजोरी वालों का घेरा बँध जाता है और तब अध्यात्म की पावन गङ्गा सर्व जन तक नहीं पहुँच पाती। घिर कर वह गँदली हो जाती है।" स्वामी जी ने कहा, "इसका जवाब मैं नहीं दे सकूँगा।" आचार्य रजनीश कहता है, "जहाँ धन होगा, वहाँ शिक्षा भी होगी, सुविधा भी ज्यादा होगी। समझने के लिए आकांक्षा भी ज्यादा होगी;

क्योंकि समझ को मैं 'लक्ज़री' (विलास) मानता हूँ। समझ गरीब आदमी का काम नहीं। वीक कैन नाट अफोर्ड इट्। समझ जो है जीवन की सबसे विलासपूर्ण अवस्था है।" हमारे धीरेन्द्र भाई कहते हैं कि 'धर्म और अध्यात्म को यदि विशिष्ट जन से सर्व जन तक ले जाना है या जगाना है तो आध्यात्मिक साधना भी लोक-जीवन के साथ समरस होकर ही करनी पड़ेगी और इसीलिए ७५ वर्ष की वृद्धावस्था में भी वे लोक-गङ्गा के तट पर विचरण कर रहे हैं।' ये तीनों उत्तर मेरे सामने हैं; परन्तु उत्तर अभी शेष है।

अछूतों के अछूत की पूजा

दो अक्तूबर ७२ को उत्तरकाशी के इण्टर कॉलेज हा
में ऋषिकेश-स्थित दिव्य जीवन सङ्घ के परमाध्यक्ष श्री स्वाम
चिदानन्द जी ने वेदान्त दर्शन को व्यावहारिक रूप देते हु
५६ हरिजनों की विधिवत् पूजा कर एक अनोखे ढङ्ग से गाँधी
जयन्ती मनायी। स्वामी जी सन् ४८ से ही अपने आश्रम में
र गाँधी-जयन्ती में सब में एकत्व की अनुभूति करते हुए
नेजी रूप से हरिजन-पूजा करते आ रहे थे। यह पहला अव-
र था जब इस पूजा को उन्होंने सार्वजनिक रूप से सम्पन्न
किया।

चिदानन्द जी उत्तराखण्ड में आध्यात्मिक व नैतिक सन्देश
था उस क्षेत्र में सर्वोदय आन्दोलन द्वारा नशाबन्दी के प्रयासों
समर्थन में कुछ प्रमुख सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं के साथ गत
६ सितम्बर से १६ अक्तूबर तक के दौरे पर थे। वे अपना
रा २ अक्तूबर के दिन स्थगित कर अपने आश्रम में लौटकर
रिजन-पूजा करना चाहते थे, लेकिन फिर तय किया गया

कि पूजा इस वर्ष उसी स्थान पर की जाय, जहाँ उस दिन उनका पड़ाव पड़ता हो। पड़ाव पड़ा उत्तरकाशी में।

२ अक्तूबर को १० बजे से १२ बजे तक चलने वाली इस हरिजन-पूजा का उत्तरकाशी में पर्याप्त प्रचार हो गया था। हरिजन-पूजा से पहले स्वामी जी ने दो ग्राम सभाओं में इसकी सूचना दे दी थी। दो घण्टे तक चलने वाली इस पूजा के पहले चरण में इसमें शामिल हुए ५६ हरिजनों के पाँव धोये गये, उन्हें पोंछा गया, माथे पर भस्म, रोली, तिलक लगाया गया, पुष्पार्पण किया गया, धूपवत्ती व मन्त्रोच्चारण के साथ आरती उतारी गयी, भोग लगाया गया। पूजा के दूसरे चरण में इन ५६ मूर्त्तियों को स्वामी जी ने परोसकर भोजन कराया, जूठी पत्तलों को स्वयं फेंका, सबसे अन्त में दक्षिणा-स्वरूप गाँधी जी के आठ आने वाले सिक्के दिये गये। क्षेत्र के सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं ने पूजा के दोनों चरणों में स्वामी जी को पूरा सहयोग दिया।

देश भर के समाचार पत्रों में समय-समय पर हरिजनों पर होने वाले अत्याचारों की खबरें छपती रहती है। कहीं उन्हें जिन्दा जला दिया जाता है; कहीं उनकी बारात रोककर मारा जाता है; क्योंकि हरिजन दूल्हा घोड़े पर चढ़ा हुआ था; कहीं एक ही कुएँ से पानी ले लेना सवर्णों के रोष का कारण बन जाता है। ऐसे समाचारों के बीच हरिजन-पूजा कार्यक्रम अभी बहुतों के गले नहीं उतरेगा। यह पूजा किसी राजनीतिक दल ने या किसी सामाजिक कार्यकर्त्ता ने नहीं की, पूजा की एक संन्यासी ने जो इस चराचर जगत् को मिथ्या मानकर, अपना घरबार छोड़ चुका है और ब्रह्म में लीन होने के प्रयास में इस नश्वर शरीर को मात्र साधन मानकर सुरक्षित रख

रहा है।

स्वामी चिदानन्द जी के लिए इस हरिजन-पूजा का ए
ही लक्ष्य है—ये हरिजन अपने को किसी से भी नीचा न समझ
एक ही विशाल मानव-जाति में जन्म लेने के बाद कहीं को
मानव अपने को श्रेष्ठ समझने की भूल न कर जाये, अपने है
साथियों को अछूत न समझने लग जाये। स्वामी जी अद्वैत
वेदान्त दर्शन के ज्ञाता हैं। उनके लिए यह पूजा एक बार
सोच-विचार कर छोड़ दिये गये संसार में, सांसारिक गति-
विधियों में फिर प्रवेश करने की भूल नहीं है। वे इसे वेदान्त-
दर्शन का व्यावहारिक पहलू मानते हैं। सब में एकत्व की
अनुभूति जहाँ 'जय जगत्' के नारे को जन्म देती है, वहीं अपने
समूह के घेरे से बाहर निकाल दिये गये एक उप-समूह को फिर
से शामिल कर लेना चाहती है।

स्वामी चिदानन्द जी का जन्म मैसूर के माध्व वैष्णव परि-
वार में हुआ था। बचपन में उन्होंने अपने एक हरिजन सह-
पाठी से अपने ही परिवार द्वारा किया गया व्यवहार देखा
था, वह घटना उन्हें आज भी ज्यों-की-त्यों याद है। उनका
सहपाठी एक दिन पाठशाला से उनके साथ घर आ गया।
दोनों पूजा-गृह के सामने लटके झूले पर बैठकर झूलते रहे,
दादी माँ ने दोनों को जलपान कराया। जब उनका सहपाठी
जाने लगा तो दादी माँ ने उससे सहज ही उसके परिवार के
बारे में पूछा। पिता का नाम और उससे जुड़ी जाति को
सुनकर दादी माँ का चेहरा काँप गया था, फिर उनके सहपाठी
का चेहरा भी काँपा था। उसे अपने 'अपराध' का अहसास
हो गया था। दादी ने कहा था, 'तुम भीतर झूले पर कैसे
चले आये, जलपान कैसे ले लिया, तुम्हें तो यह पहले ही बता

देना था।' सहपाठी इस घटना के बाद एक अपराध-भाव लिये रहा। महीनों तक स्वामी जी से स्कूल में भी कतराता रहा।

ईश्वर की पूजा कहीं हमें ईश्वर के बेटों से ही अलग न कर बैठे, एक भी व्यक्ति के प्रति किया गया ऐसा व्यवहार, प्रत्येक अणु में व्याप्त उस दिव्य सत्ता को नकारना होगा। इसलिए संन्यास-धारण करने के पश्चात् भी स्वामी जी को यह हरिजन-पूजा आवश्यक लगी।

लगभग पाँच हजार की आबादी वाले उत्तरकाशी में इस पूजा में पूजे गये ५६ हरिजनों के अतिरिक्त अन्य दस-पन्दरह लोगों ने भाग लिया था और ये लोग भी दो-तीन अपवादों को छोड़कर या तो स्वामी जी से जुड़े थे या फिर सर्वोदय से। लोग इस कार्यक्रम में शामिल क्यों नहीं हुए? प्रचार तो पूरा था। २ अक्तूबर की शाम को गाँधी-जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित एक सभा में एक नेता ने दोपहर में हुई इस पूजा पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि इसकी जानकारी होते हुए भी मैं इसमें सम्मिलित नहीं हुआ; क्योंकि मैं मानता हूँ कि हरिजनों की स्थिति में सुधार लाने के लिए पूजा-ऊजा से कुछ होगा नहीं। हमें तो अपने लड़के-लड़कियों की शादी इनसे करनी होगी। जाति के बन्धन तोड़ने होंगे। ऐसे ही क्रान्ति-कारी कदमों से उनका अंधेरा मिटेगा।

चूंकि यह पूजा पिछले पचीस वर्षों में इस वर्ष पहली बार सार्वजनिक रूप से की गयी है, इसलिए यह सवाल कट्टर तथा प्रगतिशील दोनों ही पक्षों से उठाया जायगा—क्या हरिजन पूजा का कोई औचित्य है? एक पक्ष इसमें धर्म की हानि देखेगा तो दूसरा पक्ष इसमें क्रान्तिकारी कदमों की कमी महसूस करेगा। सवाल का जवाब स्वामी जी दे चुके हैं—मैं त

बाल ब्रह्मचारी हूँ, ऐसा नहीं था कि गृहस्थ आश्रम के बाद संन्यासी बना। लेकिन यदि ऐसा होता, मेरी कोई सन्तान होती तो मैं इस आश्रम से लौटकर उसे समझाता कि तुम किसी हरिजन से शादी करना। अब एक संन्यासी के नाते मेरी तो यह क्षमता है, हर वस्तु में ब्रह्म के दर्शन करूँ। फिर यह पूजा स्वयं में साध्य नहीं है, यह उस दिशा में बढ़ने का एक साधन है। सामाजिक कार्यकर्त्ताओं या राजनीतिक दलों द्वारा किये गये अन्य प्रयत्नों में यह सहायक भी हो सकती है और पूरक भी।

—अनुपम (संस्थाकुल के नवम्बर १६७२ के अङ्क के सौजन्य से)।

३-

AN OPINION ABOUT 'ANASAKTI ASHRAM'

ओ३म्

ओ३म् श्रीराम श्रीराम श्रीराम श्रीराम श्रीराम श्रीराम श्रीराम

'सत्यमेव जयते'

Homage unto the holy memory of worshipful and beloved Bapu Ji. This visit to ANASAKTI is in a way the highlight or the crowning point of my twenty-one-day tour of the interior of our hill-districts under the auspices of Sarva Seva Sangh. To-day has been to me a blessed day and I am strongly reminded here of my visit to Mahatma Gandhi's Phoenix settlement in Natal province near Durban (South Africa). Anasakti Ashram devoutedly enshrines and nurtures the spirit of Bapu Ji. May it also become a centre to experiment actively in the Gandhian thought and ideals. May it also work to systematically spread and propagate the ideals of his Sarvodaya concept of society in India.

I wish this Ashram progress, expansion and a glorious future. God's power must work through

Gandhian principles and ideals to bring about Bharatiyan India. I thank the management of the Ashram for all their kindness and gracious hospitality to me and my party. This Ashram is an invaluable asset to our nation.

Long may Gandhi Ji's ideas and ideals prevail in India and the world.

Swami Chidananda

9-10-72

(VISITORS' BOOK OF ANASAKTI ASHARM)

४-

सेवक की प्रार्थना

हे नम्रता के सम्राट् !
दीन भङ्गी की हीन कुटिया के निवासी,
गङ्गा, यमुना और ब्रह्मपुत्र से सिञ्चित
इस सुन्दर देश में तुझे सब जगह खोजने में
हमें मदद दे।
हमें ग्रहणशीलता और खुला दिल दे।
तेरी अपनी नम्रता दे।
हिन्दुस्तान की जनता से एक रूप होने की शक्ति और
उत्कण्ठा दे।

हे भगवन् !
तू तभी मदद के लिए आता है
जब मनुष्य शून्य बनकर तेरी शरण लेता है।
हमें वरदान दे कि
सेवक और मित्र के नाते
जिस जनता की हम सेवा करना चाहते हैं,
उससे कभी अलग न पड़ जायें।

हमें त्याग, भक्ति और नम्रता की मूर्ति बना,
ताकि इस देश को हम
ज्यादा समझें और ज्यादा चाहें ।
—मानवता की जय !

—गाँधी जी

एकादश व्रत

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह,
शरीर - श्रम, अस्वाद, सर्वत्र भय - वर्जन,
सर्वधर्म समानत्व, स्वदेशी, स्पर्श-भावना—
विनम्र व्रत निष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं ।

—o—

आदर्श विवाह की अमर प्रतिज्ञाएँ

१. हम दोनों व्रत, यज्ञ, दान आदि सत्कार्य साथ-साथ और एक दूसरे की सम्मति से करेंगे।

२. देवकार्य, तीर्थयात्रा और समाज-सेवा में हम सह-भागी रहेंगे।

३. अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण तथा गृहस्थी के अन्य कार्य साथ-साथ मिलकर करेंगे।

४. हम जो भी धन और अन्न अपने श्रम और प्रयास से अर्जन करेंगे, उसका व्यय एक दूसरे की सम्मति से करेंगे।

५. अपनी आजीविका कमाने के लिए हम नैतिक मार्ग का अवलम्बन करेंगे। हमारे व्यवसाय तथा हमारे उद्योग हमारे लिए केवल वित्तार्जन के साधन नहीं होंगे, बल्कि समाज-सेवा के सोपान होंगे।

६. हम एक दूसरे के प्रति सद्भाव, प्रेम और परस्पर सम्मान के साथ भक्ति-भावना रखेंगे तथा जीवन पर्यन्त हम

दोनों पतिव्रत धर्म एवं एकपत्नी-व्रत पर अटल रहेंगे।

७. अब हम इस पवित्र अग्नि को साक्षी करके प्रतिज्ञा करते हैं कि हम मिलकर गृहस्थ-धर्म का पालन इस प्रकार करेंगे जिससे हमारे परिवार के साथ-साथ समाज का भी उत्थान हो।

डिवाइन लाइफ सोसायटी एक पाश्चात्य लेखक की दृष्टि में

गङ्गा के तट पर हृषीकेश में अवस्थित 'योग-वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय' और डिवाइन लाइफ सोसायटी (सन् १९३६ में स्थापित) के संस्थापक स्वामी शिवानन्द आज भी हिमालय का धार्मिक और आध्यात्मिक सन्देश अपने देश की भौगोलिक सीमाओं से परे तक पहुँचा रहे हैं। आधुनिक भारत के आध्यात्मिक जीवन के सन्दर्भ में स्वामी शिवानन्द सर्वाधिक चर्चित व्यक्ति हैं।

यहां पर मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि पूरे पाश्चात्य जगत् में भी ऐसे लोग बहुत अधिक संख्या में हैं, जिनकी आस्था और श्रद्धा हिमालय की रहस्यमयी गरिमा में है। इस वर्ग तक हिमालय का सन्देश पहुँचाने के लिए पाश्चात्य जगत् 'डिवाइन लाइफ सोसायटी' के प्रति आभारी है। इस सोसायटी का काफी प्रभाव पश्चिमी देशों में है। हमारे अपने युग में एक विशिष्ट प्रकार का पौवत्य दर्शन विस्तार पा रहा है, जो पश्चिमी देशों

में कुछ वर्गों को बहुत अधिक आकर्षित करता और प्रिय लगता है। इसी से जब मैं देखता हूँ कि मार्गरेट श्नीडर नाम की स्विस महिला 'वायस आव् हिमालयाज़' अथवा 'सिन्थेसी यूनीवर्सेले' जैसे पत्र जेनेवा से प्रकाशित करके इस पौर्वात्य दर्शन का प्रचार पश्चिमी जगत् में करती है तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता। इस महिला की नज़रों में स्वामी शिवानन्द 'हिमालय के सर्वोच्च सन्त' हैं। स्वामी शिवानन्द के व्यक्तित्व और प्रभाव का अङ्कन करने के लिए सुश्री श्नीडर ने 'टावरिङ्ग सेण्ट आव् हिमालयाज़' शीर्षक एक पुस्तक भी लिखी है।

वाल्टर लाइफर के 'वैल्टप्राब्लेम अम हिमालया' के हिन्दी अनुवाद 'पर्वताकार प्रारब्ध हिमालय' से।

७-

हिमालय की तीर्थयात्रा के प्रति उचित दृष्टिकोण

यदि तुमने तीर्थयात्रा के कष्टों को हँसते-हँसते पार कर लिया है तो यह मत भूलो कि इसका आनन्द अथवा फल मात्र कैलास के दर्शन अथवा मानसरोवर या गौरीकुण्ड में स्नान में ही निहित नहीं है; इसकी सफलता मार्ग में दिखायी दी सुन्दर और मनभावन दृश्यावलियाँ भी नहीं हैं। ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ, कैलास और मानसरोवर के क्षेत्र में आकर तुम इस पावन वातावरण में मिल जाते हो, घिर जाते हो। इस स्वर्णिम अवसर का लाभ उठाओ। यदि सारा दिन ऐसा करना तुम्हारे लिए सम्भव न हो तो प्रतिदिन उषाकाल में और सन्ध्या समय एकान्त में मौन समाधि धारण करके उस दिव्यात्मा का ध्यान करो, जो तुम्हारे समक्ष पवित्र मानसरोवर और कैलास पर्वत के रूप में उपस्थित है। तदनन्तर समाधिस्थ होकर उस दिव्य सत्ता का चिन्तन करो, जिससे तुम अध्यात्म के उच्चतम शिखर तक उठ सको, [illegible]

ग्रौर निर्मल हो उठे, जिसने कैलास के शिखर को ढक रखा है, ग्रौर जिससे तुम्हारा मन मानसरोवर के जल की तरह स्फटिक-सा स्वच्छ ग्रौर पारदर्शी बन जाये। तभी तुम्हारे हृदय ग्रौर ग्रात्मा का सारा मल दूर हो जायेगा, धुल जायेगा, बह जायेगा।

—स्वामी शिवानन्द

वाल्टर लाइफर की जर्मन कृति 'वैल्टप्राब्लेम ग्रम हिमालया' के हिन्दी ग्रनुवाद 'पर्वताकार प्रारब्ध हिमालय' से।

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव !
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।
हमें उदारता, समदर्शिता और मन का
समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर
मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहङ्कार, काम, लोभ और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से पूर्ण करो।
सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में
इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गायन करें।
केवल तुम्हारा ही कलिकल्मपहारी नाम
हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।